देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला—

संपादक—रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा

सुलैमान सौदागर

का

यात्रा-विवरण

अनुवादक
महेशप्रसाद 'साधु,' मौलवी आलिम मौलवी फ़ाज़िल,
अध्यापक सेंट्रल हिंदू कालिज हिंदू विश्वविद्यालय, काशी।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा
प्रकाशित

प्रथम संस्करण १०००] संवत् १९८८ [मूल्य ॥)

देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला—३

संपादक—रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा

सुलैमान सौदागर
का
यात्रा-विवरण

अनुवादक
महेशप्रसाद 'साधु,' मौलवी आलिम मौलवी फाज़िल,
अध्यापक, सेंट्रल हिंदू कालेज, हिंदू विश्वविद्यालय काशी।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा
प्रकाशित

प्रथम संस्करण १०००] सन् १९२८ [मूल्य ॥)

भूमिका

भारतवर्ष और चीन देश के विषय में जो सामग्री मुसलमानो की लिखी पाई जाती है उसमें सबसे प्राचीन सामग्री अरबी भाषा मे है। उसीका हिंदी अनुवाद मूल अरबी से पाठकों की भेंट कर रहा हूँ। यह मूल अरबी सुलैमान नामी एक मुसलमान सौदागर का यात्रा-विवरण है। मुसलमानी जगत् मे भारत और चीन के विषय में इससे अधिक प्राचीन और कोई लेख पाया नहीं जाता, इस कारण इस यात्रा-विवरण का लेखक ही भारतवर्ष और चीन में पहला मुसलमान यात्री समझा जाता है। इसकी यात्रा कब और क्यों कर हुई इसका उत्तर पाठको को 'प्रस्तावना' से भली भाँति मिल जावेगा।

देश मे अच्छी अंग्रेजी जाननेवाले अनेक इतिहास-प्रेमी हैं। इनमें से कुछ लोगो ने थोडे ही काल में अपनी देश-भाषा में अनेक इतिहास रचकर राष्ट्र भाषा के अनुराग का अच्छा परिचय दिया है तथा चीन, यूनान और फ्रांस आदि देशो के यात्रियो के यात्रा-विवरणो का अनुवाद अंग्रेजी अथवा मूल भाषा से अपनी भाषा में कर दिखाया है। पचास वर्ष से भी अधिक बीत चुके हैं कि इलियट लिखित इतिहास से सुलैमान के यात्रा-विवरण का पूरा परिचय हमारे

इतिहास प्रेमियों को मिल चुका है। इसके सिवा अंग्रेज़ी के एक और ग्रंथ से भी इसका पता कुछ चल जाता है। परंतु अभी तक इस यात्रा-विवरण का अनुवाद हमारे देश की किसी भी भाषा में नहीं किया गया। इस अवस्था में ईश्वर का कोटिशः धन्यवाद है कि मैं सारे यात्रा-विवरण का मूल अरबी भाषा से हिंदी भाषा में अनुवाद कर देने मे समर्थ हुआ हूँ। मेरा विश्वास है कि अनेक पाठकों के लिये यह बात अवश्य विस्मयजनक होगी कि २०० वर्ष से भी अधिक हुए कि सन् १७१८ ई० में अरबी भाषा की मूल हस्तलिखित प्रति से ही इसका अनुवाद फ्रांसीसी भाषा में प्रकाशित हुआ था। बाद को सन् १८११ ई० मे मूल ग्रंथ अरबी अक्षरों में छपा। सन् १८४५ ई० मे फ्रांसीसी अनुवाद फिर शोधित रूप मे प्रकाशित हुआ, जिसमें सन् १८११ ई० की छपी हुई सामग्री अनुवाद के साथ मिला दी गई और संपूर्ण ग्रंथ इ[illegible] से प्रकाशित हुआ—

RELATION
DES VOYAGES
FAITS
Par les Arabes et les Persans
Dans L' Inde et A' La Chine

इस ग्रंथ से अनुवाद तथा टीका आदि के देने में मुझे जितना परिश्रम करना पड़ा है उससे कम परिश्रम मूल ग्रंथ को प्राप्त करने में नहीं पड़ा। परिश्रम के अतिरिक्त इस ग्रंथ के

संबंध में केवल सफर खर्च के लिये ही नहीं बल्कि डाक व्यय के लिये भी एक रकम लगानी पड़ी है। खैर! जो हुआ सो हुआ। यदि यह पुस्तक हमारे पाठकों के लिये उपयोगी हुई तो मेरा सारा परिश्रम तथा व्यय सार्थक हुआ।

हिंदू विश्वविद्यालय,
काशी,
१५ आश्विन, १९७८

निवेदक
महेशप्रसाद 'साधु'
मौलवी-आलिम, मौलवी-फाजिल

विषय-सूची

—

प्रस्तावना।

मूल ग्रंथ तथा ग्रंथकार।

मुसलमानों का प्रशंसनीय साहस

लोकमान्य हजरत मुहम्मद साहब का शुभ वचन है—

"दस भागों में से नौ भाग मनुष्य की वृत्ति व्यापार में है"।

इसके सिवा अरबी में एक सुभाषित विचार है—

अस्सफ़रो वसीलतुज़्ज़फ़र।

(السفر وسيلة الظفر)

अर्थात्—यात्रा सफलता की कुंजी है।

यात्रा के निमित्त आज जैसी सुगमताएँ हैं वे किसीसे छिपी नहीं हैं। आज से एक हजार वर्ष पहले यात्रा तथा भ्रमण करना कितना कठिन रहा होगा इसका अंदाजा बहुत कुछ केवल वेही लोग कर सकते हैं जिनको ऐसे स्थान में आने जाने का अवसर पड़ा है जहाँ रेल तथा मोटर आदि की गुजर नहीं है। सुजान लोग अनभिज्ञ नहीं हैं कि आज से एक हजार वर्ष पहले युरोप की ईसाई जातियों पर घोर अंधकार छाया हुआ

था, वहाँ मुसलमान लोगों की ही तूती बोल रही थी। ऐसे समय में मुसलमान लोगों ने भरसक प्रयत्न करके दूर देशों में जितना भ्रमण किया इतिहास के पृष्ठ उससे कोरे नहीं हैं। अतः उस समय के वृत्तांतों को सामने रखते हुए कोई भी शुद्ध हृदय से उनकी प्रशंसा किए विना नहीं रह सकता।

जानना चाहिए कि मुसलमान लोग पहले पहल व्यापारार्थ ही दूर देशों में पहुँचे। ये लोग केवल थल-मार्ग ही से नहीं गए बल्कि जल-मार्ग के ग्रहण करने में भी इन्होंने बड़ी निर्भयता दिखलाई है। ये लोग अफ़्रीका और युरोप के कुछ हिस्सों में पहुँचे। चीन की पूर्वीय सीमा तक पहुँचे। ऐसा करने में उन्होंने केवल थल-मार्ग ही पर संतोष नहीं किया बल्कि वे अपनी नौकाएँ तथा जहाज़ लेकर हिंद महासागर से भी गुज़रते थे और बड़े धैर्य के साथ समुद्री मार्ग से भी चीन की पूर्वी सीमा तक अपना माल असबाब लेकर पहुँचते थे। वे दूर से दूर स्थान में भी जाने से हिचकते न थे, इक्के दुक्के नहीं बल्कि समूह का समूह बनाकर चलते थे। अब भी समूह का समूह बनाकर चलने की शैली मुसलमानों में है। जहाँ रेल अथवा दूसरे प्रकार की सवारी के सामान नहीं हैं वहाँ के लोग अब भी ऐसा ही करते हैं। वर्ष के एक नियत समय पर मक्का नगर की यात्रा करने की प्रथा मुसलमानों में है। उस अवसर पर प्रायः ऐसा ही किया जाता है।

मुसलमान सौदागर

जो मुसलमान सौदागर विदेश में जाते थे उन्होंने ही लोगों को दूसरे देशों का हाल बतलाया। वास्तव में उन्होंने ही आदि में यात्रियों का कर्त्तव्य पालन किया। इनसे ही बहुत कुछ समाचार पाकर इब्न हौकल बगदादी, मसऊदी, अलबिरूनी और इब्नबतूता आदि अनेक लोगों ने यात्रा पर कमर बाँधी, यहाँ तक कि अपनी आयु का एक बड़ा भाग भ्रमण में ही निरंतर काटा, केवल भ्रमणार्थ ही सहस्रों कष्ट उठाए, भूगोल तथा इतिहास आदि में विशेष रूप से वृद्धि की, अनेक लोगों को लाभ पहुँचाया, अपनी जाति की सेवा की और अपना नाम सदैव के लिये इतिहास में अमर कर गए। इसके सिवा क्या यह बात इतिहास जाननेवालों को मालूम नहीं कि भारतवर्ष से अनेक चीजें काबुल और कंधार के मार्ग से सारे पश्चिम में फैलती थीं। निस्संदेह उन्हीं चीजों को देखकर महमूद गजनवी को भारत के धन का लालच समाया, यहाँ तक कि उसने सत्रह हमले भारतवर्ष पर किए। निस्संदेह उसने भारत के विषय में बहुत कुछ सौदागरों ही से मालूम किया था। अस्तु, इस प्रकार की बातों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय के मुसलमान सौदागर व्यापार ही में कुशल न थे बल्कि साथ ही साथ चतुर यात्री का कर्त्तव्य भी पालन किया करते थे। मुसलमान लोग जब तक अनेक देशों में भ्रमण करते रहे, जब तक व्यापार

इनके हाथ में रहा, लक्ष्मी इनकी दासी रही। जब से व्यापार इनके हाथ से गया और युरोप निवासियों ने उसे अपने काबू में किया तब ही से मुसलमानों की अवस्था शोचनीय हो गई है।

सबसे प्राचीन यात्राविवरण

भारतवर्ष के संबंध में जिस प्रकार अनेक यूनानी, चीनी फ्रांसीसी आदि लोगों के यात्राविवरण पाए जाते हैं उसी प्रकार अनेक मुसलमानों के भी यात्राविवरण हैं। मसऊदी, अलबिरूनी और इब्नबतूता आदि यात्रियों का नाम तथा काम इस विषय में विशेष रूप से गौरव रखता है। परंतु इस प्रकार के सारे यात्राविवरणों में जो सबसे प्राचीन समझा जाता है वह सुलैमान (سليمان) नाम के एक सौदागर का लिखा है, जिसने व्यापारार्थ केवल भारत ही में भ्रमण नहीं किया, बल्कि चीन का भी चक्कर काटा था।

इलियट महोदय का मत

इलियट ने भारतवर्ष का एक महत्वपूर्ण इतिहास मुसलमानों द्वारा संकलित सामग्री के आधार पर अँग्रेज़ी में लिखा है। उसमें भी उन्होंने सुलैमान सौदागर के यात्राविवरण को ही सबसे प्राचीन लेख माना है[1]।

---

(१) हिस्ट्री आफ इंडिया एज़ टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स (मुहम्मडन पीरियड), आठ भाग, इलियट लिखित और डासन संपादित। प्रथम भाग के प्रारंभ में सुलैमान का उल्लेख है।

डा० लीवान

फ्रांसीसी डाकृर लीवान इस सौदागर को ही भारत का पहला मुसलमान यात्री बतलाते हैं[१]। डाकृर महोदय का यह भी कथन है कि सुलैमान का यात्राविवरण पहली पुस्तक है जो कि युरोप में चीन के सम्बध में प्रकाशित हुई। निदान भारत तथा चीन के लिये सुलैमान सौदागर को ही प्रथम मुसलमान यात्री समझना उचित प्रतीत होता है।

सुलैमान का परिचय

सुलैमान फारस का सौदागर था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका सारा कारबार बसरा नगर में था अथवा वह बसरा में ही बस गया था। उस जमाने में व्यापार ज्यादातर मुसलमानो के हाथ में था। इन्हींकी बदौलत भारत तथा चीन से अनेक चीजें सारे युरोप और अफ्रीका मे पहुँचती थीं। इस बहाने से सौदागर भी बहुत सफर किया करते थे। निदान सौदागरी के ही सिलसिले में सुलैमान ने भी भारत तथा चीन की कई बार यात्रा की। सौदागर की ही लेखनी से यह भी स्पष्ट रूप से जाना जाता है कि उसका सम्बध भारत के साथ बहुत समय तक रहा। वह लिखता है कि एक बार

---

(१) देखो उर्दू में 'तमद्दुन अरब' (تمدن عرب)। इस ग्रंथ को पहले डाक्टर लीवान ने फ्रांसीसी भाषा में लिखा था, पीछे से सैयद अली बिल्ग्रामी ने इसका उर्दू में अनुवाद किया।

(भारत में) मैंने एक मनुष्य (साधु) को देखा जो केवल एक ही मृगचर्म धारण किए हुए था और सूर्य्य की ओर देख रहा था। सोलह वर्ष बाद जब मैं फिर उस स्थान पर आया तो देखता हूँ कि वह मनुष्य उसी तरह खड़ा था। अतएव सिद्ध होता है कि उसने सारी बातें अपनी जानकारी के सहारे लिखी हैं।

समय

सुलैमान के यात्राविवरण के लेख-बद्ध किए जाने का समय सब इतिहास लेखक सन ८५१ ई० लिखते हैं। इससे सिद्ध है कि सुलैमान की यात्राएँ ईसवी नवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अवश्य सन ८५१ ई० से पहले ही हुई हैं।

हस्तलिखित मूलग्रंथ के अनुवाद

अरबी भाषा में सिलसिलातुत्तवारीख़ (سلسلة التوارىخ) नामी एक ग्रंथ है। यह दो भागों में विभक्त है। पहले भाग की सामग्री सौदागर सुलैमान की सन् ८५१ ई० की संपादित है। दूसरे भाग की अबूज़ैद हसन सीराफ़ी (ابوزىد حسن سيرافى) की लगभग सन् ९१६ ई० की लिखी हुई है। दोनों भारत और चीन के विषय में हैं। सारी की सारी सामग्री फ्रांस के मंत्री कोलवर्ट महोदय के पुस्तकालय में पाई गई थी। सन् १७१८ ई० में अबे-रीनो (Renaudot) ने इसका अनुवाद

फ़ासीसी भाषा मे पहले पहल प्रकाशित किया। सुलैमान ने चीन तथा भारत की यात्रा की थी। अबूजैद हसन सीराफी न तो भारत ही में आया था और न चीन ही मे गया। वह फारस के बदर सीराफ का निवासी था। सभवत बसरा ही में रहा करता था। उसने चीन और भारत के विषय मे जो कुछ लिखा है वह सुलैमान तथा मसऊदी ऐसे लोगों के सहारे लिखा है। परतु फ़ासीसी अनुवादक ने यह समझा था कि अबूजैद हुसन सीराफी ने भी वास्तव मे चीन और भारत की यात्रा की थी क्योंकि अबे-रीनो ने अनुवादित सामग्री के शीर्षक को निम्न लिखित शब्दो में प्रकट किया है—

Anciennes Relations des Inde et de la Chine de deux etc[1]

'सिलसिलातुत्तवारीख' का अंग्रेजी अनुवाद मिस्टर यूसेबिअस रीनो (Eusebius Renaudot) ने मूल अरबी से सन् १७३३ ई० में निम्नलिखित नाम से लडन में छपवाया—

Ancient Accounts of India and China by two Mohammadan Travellers (London, 1733 A D)

इस अनुवादित ग्रथ मे सिलसिलातुत्तवारीख के अनुवाद के सिवा भारत तथा चीन सबधी कुछ अन्य बातें भी दी गई हैं। परतु अबूजैद की बाबत जो कुछ फ़ासीसी अनुवादक महोदय ने समझा, वही अंग्रेजी के भी अनुवादक ने समझा,

१—देखो इलियट लिखित इतिहास, पहला भाग।

अर्थात् अबूज़ैद को भी भारत तथा चीन में यात्रा करनेवाला माना।

अरबी की मूल प्रति का प्रकाशन

फ़्रांसीसी अनुवाद के प्रकाशित होने से एक काफ़ी समय बाद मूल प्रति के प्रकाशित होने की नौबत आई। सन् १८११ ई० में मोशों लैंगले (Monsicur Langles) ने मूल अरबी सामग्री को अरबी अक्षरों में छपवाया और अनुवाद के प्रकाशित करने का वादा किया। सन् १८२४ ई० में लैंगले का देहांत हो गया और अनुवाद प्रकाशित न हुआ। सन् १८४५ ई० में मोशों रीनो (Reinaud) ने केवल फ़्रांसीसी अनुवाद ही नहीं निकाला, बल्कि ग्रंथ में कई उपयोगी बातें भी दीं। उस ग्रंथ का नाम यह है—

Relation
Des Voyages
Faits
Par les Arabes et les Persans
Dans L' Inde et A' La Chine

यह ग्रंथ फ़्रांस की राजधानी पैरिस में छपा है। सारा ग्रंथ दो प्रतियों में है। पहली प्रति मे लैंगले महोदय का छपवाया हुआ अरबी मूल है और साथ ही साथ पर्याप्त टीका है, उसमें कई अच्छी बातें बतलाई गई हैं। दूसरी प्रति में अरबी सामग्री का विशुद्ध फ़्रांसीसी अनुवाद पर्याप्त प्रस्तावना

सहित है। परतु इस ग्रथ में जो वात अति उत्तम हुई है वह यह है कि अवूजैद हसन सीराफी को यात्री नहीं वतलाया गया अर्थात् पहले जो यह समझा गया था कि अवूजैद ने जो कुछ लिखा है वह अपने अनुभव के आधार पर लिखा है, उसका सशोधन इस वार कर दिया गया अर्थात् अवूजैद हसन सीराफी को भारत अथवा चीन में जानेवाला यात्री नहीं माना गया।

मूल अरवी ग्रथ की प्राप्ति की रामकहानी

अब जब कि यह वात स्पष्ट हो गई है कि केवल सुलैमान सौदागर ने ही यात्रा की थी, उसीका यात्राविवरण सवसे अधिक प्राचीन और उसे ही सवसे पहला मुसलमान यात्री समझा जाता है। अत इस अवसर पर मैंने केवल सुलैमान के ही यात्राविवरण का अनुवाद पर्याप्त समझा है। परतु यात्राविवरण का पता पहले पहल मुझे कव लगा, कैसे लगा, फिर कितने दिनों के वाद मूल ग्रथ हिंदी में अनुवाद के लिये मिल सका तथा कितनी कठिनाइयों से मिला—इस प्रकार की वातों को भी सक्षिप्त रूप से वतला देना उचित है।

जानना चाहिए कि अरवी मे 'मजानिल अदव' (مجانی الادب) नाम की एक पुस्तक गद्य पद्य में है। वह छ भागों में है और वेरूत में छपी है। उस ग्रथ का मान अरवी साहित्य ससार में

वहुत ज्यादा है। उसीके पहले भाग में सिलसिलातुत्तवारीख़ का कुछ अंश है। आठ वर्ष से भी अधिक हुए जव कि मैंने पहले पहल सिलसिलातुत्तवारीख़ का नाम जाना था। अस्तु, इतिहास की ओर कुछ थोड़ी सी रुचि होने के कारण उसी समय मेरी प्रवल इच्छा हुई कि जो कुछ उस इतिहास मे भारत के संवंध में लिखा है उसको जान लूँ। परंतु उसके पश्चात् पठन पाठन आदि का पूरा भार सिर पर पड़ जाने के कारण कई वर्षों तक साधारण उद्योग के सिवा इस ग्रंथ के निमित्त विशेष उद्योग न कर सका।

पहले मेरी इच्छा केवल ग्रंथ के पढ़ने ही की थी। मेरा विचार कदापि नहीं था कि मैं इस ग्रंथ का हिंदी अनुवाद करूँ। जव इलियट द्वारा लिखित इतिहास से मुझे सिलसिलातुत्तवारीख़ का यथोचित परिचय मिल गया तव पिछले वर्षों में पढ़ाई का साधारण भार होने पर भी मैंने मूल अरवी ग्रंथ की प्राप्ति के निमित्त विशेष रूप से कष्ट उठाया। दर्जनों विद्वानों से इसकी वावत पूछा पुछवाया। कुछ अवसर निकालकर कई अच्छे अच्छे पुस्तकालयों को स्वयं जाकर देखा तथा वहुतों के साथ वहुत कुछ पत्र-व्यवहार किया यहाँ तक कि उत्तर के निमित्त टिकट भेजे, परंतु कहीं से उत्तर मिला कि कुछ पता नहीं चलता, किसी ने उत्तर दिया कि हमारे यहाँ नहीं है, किसी ने किसी प्रकार का उत्तर देने का भी कष्ट न उठाया। मैं इसी उधेड़ वुन में लगा हुआ था कि एशियाटिक सुसाइटी

वम्बई के मन्त्रीजी का लिखा हुआ कृपापत्र मिला कि इंपीरियल लाइब्रेरी, कलकत्ता, से पूछना अधिक उचित है। उनकी इस समति के अनुसार वहाँ से पूछा। ईश्वर की कृपा से शीघ्र उत्तर मिला कि पुस्तक है। ऐसा उत्तर पाकर वडी प्रसन्नता हुई और चित्त ठिकाने हुआ।

अब मैं इस फेर मे पडा कि किसी प्रकार पुस्तक देखने के लिये मिले। इसी सोच विचार मे था कि इंपीरियल लाइब्रेरी के पुस्तकाध्यक्ष ने स्वय विना मेरे पूछे ऐस साधन के वतलाने की कृपा की जिसके द्वारा मैं पुस्तक को सुगमता से प्राप्त कर सका। फिर पुस्तक के देखने से ज्ञात हुआ कि पुस्तक को कहीं कहीं कीडों न खा रक्खा है, यहाँ तक कि मूल अरबी पाठ के भी कुछ शब्दों तथा अक्षरों को हानि पहुँच चुकी है। अब इस त्रुटि की पूर्ति भी कोई साधारण वात न थी, परतु कई वार पाठ करने और सोचने विचारने से यह त्रुटि तथा कठिनाई भी दूर हो गई, और पाठ निस्सदेह यथोचित रूप से ठीक हो गया। इसके वाद मैंने अरबी पाठ की नकल की और फिर हिंदी अनुवाद की नौवत आई। इस रामकहानी से पाठकों को जहाँ यह पता लग रहा है कि मुझे मूल पुस्तक के निमित्त कितनी कठिनाई हुई है उसीके साथ ही पाठक इस वात के समझने से भी वञ्चित नहीं रह सकते हैं कि भारत के पुस्तकालयों मे इस पुस्तक का कितना अभाव है।

मूल यात्राविवरण पर एक दृष्टि

मैं इस बात का भी उल्लेख करना उचित समझता हूँ कि सुलैमान के यात्राविवरण को कई बार पढ़ने तथा सावधानी के साथ अनुवाद करने के कारण मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि अरबी साहित्य तथा अलंकार की दृष्टि से इस विवरण की इबारत का बहुत बड़ा भाग बहुत अच्छा है। ऐतिहासिक ग्रंथ होने पर भी इसकी इबारत ऐसी परिपूर्ण है जैसी कि किसी ठेठ साहित्य ग्रंथ की होती है। यही कारण है कि इसका कुछ अंश साहित्य की एक उत्तम पुस्तक में भी चुनकर रक्खा गया है। परंतु यह भी जान लेना चाहिए कि पुस्तक की इबारत कहीं कहीं ऐसी भी है जैसी कि दर्शन शास्त्रों की होती है, अथवा कहीं कहीं कुछ टेढ़ी भी है। और कहीं कहीं ऐसी भी है जिसको वस्तुतः वही समझ सकता है जो व्याकरण के उलझन में डालनेवाले नियमों से भली भांति परिचित हो।

सौदागर होते हुए भी सुलैमान ने वास्तव में यात्री का भी बहुत कुछ धर्म पाला है परंतु वह सर्वथा यात्री ही नहीं था इस कारण विवरण में की बातें असंबद्ध भी हैं। यद्यपि कहीं किसी बात का वर्णन है और कहीं किसी बात का, तथापि सुलैमान का यात्राविवरण अति आदरणीय तथा महत्वपूर्ण है और उसकी उपयोगिता से कदापि तनिक भी इनकार नहीं किया जा सकता। फलतः सुलैमान ने क्या लिखा

है, कैसा लिखा है इन सब बातों का पता पाठकों को मूल सामग्री से ही लगेगा।

ईसवी नवीं शताब्दी में भारत तथा चीन के साथ मुसलमानों का संबंध कैसा था, लोग किस प्रकार जहाज लेकर एक देश से दूसरे देश में आते जाते थे—ये सब बातें ग्रंथ से बहुत कुछ मालूम हो जायँगी। चीन राज्य के नगर खानफू के एक न्यायाधीश का वर्णन सुलैमान ने किया है। खानफू को समुद्र के तट पर एक बंदर बतलाया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल में मुसलमान लोग पहले समुद्र-मार्ग द्वारा चीन में पहुँचे थे। इन सब बातों के सिवा भारत तथा चीन से संबंध रखनेवाली कई अन्य महत्त्व-पूर्ण बातें भी मालूम हो जायँगी।

हिंदी अनुवाद

एक बड़े अनुवादक का मत है कि अनुवाद के दो मुख्य उद्देश होते हैं। अनुवाद या तो इस उद्देश से किया जाता है कि उसके सहारे मूल ग्रंथ के अवलोकन में आसानी हो अथवा इस उद्देश से होता है कि जो बात मूल लेखक ने अपनी भाषा में लिखी है उसीको दूसरी भाषा में भी लिखा जाय। अतः यह हिंदी अनुवाद पहले उद्देश की नहीं बल्कि दूसरे उद्देश की पूर्ति के निमित्त है।

सच तो यह है कि यात्राविवरण के साधारणतया केवल

अनुवाद कर देने में अधिक कष्ट नहीं हुआ किंतु जिन बातों की बदौलत असाधारण कष्ट का मुँह देखना पड़ा अथवा अधिक कष्ट न होने की कसर निकल गई वे निम्न लिखित हैं—

(क) असंबद्ध बातों को यथोचित रूप से सुलझाकर रखना।

(ख) एक हज़ार वर्ष से भी अधिक बीते हुए समय की पुरानी वस्तुओं तथा बातों के संबंध में जो शब्द अरबी में आए हैं उनमें से कुछ ऐसे हैं जो कि अब बहुत कम प्रचलित हैं। उनका नाता अब केवल कोषों से ही रह गया है। ऐसे शब्दों का ठीक ठीक अर्थ खोजकर लिखना।

(ग) ऐसे शब्द का ठीक ठीक अर्थ खोजकर लिखना जो कि अपने समान जातिवाली वस्तु के निमित्त प्रयोग में लाया गया हो और वह शब्द अब दोनों तथा अन्य कई वस्तुओं का भी सूचक हो। जैसे चीन में बाँस बहुत होता है और अरब में नहीं होता। अरबी में इसके लिये वास्तव में कोई शब्द नहीं था। 'क़ना' (قنا) शब्द बेंत, सरकंडा तथा भाला आदि का सूचक है। अतः 'सरकंडा' तथा 'बेंत' के समान होने के कारण 'बाँस' को भी 'क़ना' ही लिख दिया। अब जब कि इस बात का पता हो कि चीन मे बाँस होता है और पहले भी वहाँ बहुत होता था तथा चीन में बाँस

बहुत उपयोगी वस्तु है तब ही चीन के विषय में 'कना' का ठीक अर्थ बाँस लिया जा सकता है नहीं तो 'बेंत' तथा 'सरकंडा' भी लिया जा सकता है जो कि त्रुटिपूर्ण है।

अरबी भाषा तथा साहित्य के विषय में एक बड़ी गंभीर बात यह भी है कि कोई शब्द जब कि अ, इ और उ अर्थात् जबर, जेर और पेश नाम की मात्राओं से शून्य होता है तो उसका उच्चारण कई प्रकार से हो सकता है और प्रत्येक अवस्था में उसके अर्थ भी बहुत तथा भिन्न भिन्न हो जाते हैं। साहित्य ग्रंथों में आवश्यकतानुसार सारी अथवा कहीं कहीं मात्राएँ होती हैं नहीं तो बाकी सारे ग्रंथ मात्रारहित हुआ करते हैं। परंतु ये कठिनाइयाँ तथा बातें ऐसी नहीं हैं जिनको अरबी के योग्य विद्वान् सोच समझकर सुलझा न सकते हों।

अरबी की रचना हिंदी से बिल्कुल भिन्न होती है, यहाँ तक कि अरबी के किसी किसी शब्द का अनुवाद वास्तव में हिंदी तथा अन्य कई भाषाओं में एक पूरी पंक्ति में ही हो सकता है। निस्संदेह हिंदी में अभी तक कोई ऐसी पुस्तक नहीं छपी है जिसका सीधे अरबी से अनुवाद किया गया हो। इस कारण इस विषय में केवल अपनी ही सोच समझ से बहुत कुछ करना पड़ा है। इसमें संदेह नहीं कि यद्यपि इस प्रकार की बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित हुई परंतु मेरे लिये वे वस्तुत बिलकुल असाध्य न थीं।

हिंदी अनुवाद की विशेषता

फ़्रांसीसी और अंग्रेज़ी की दो आवृत्तियों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। इनमें से फ़्रांसीसी आवृत्ति अधिक पुरानी न होने के कारण मेरे कार्य्य के लिये अधिक उपयोगी हो सकती थी, परंतु फ़्रांसीसी भाषा न जानने के कारण मैं उससे यथोचित लाभ बिल्कुल ही न उठा सका। अंग्रेज़ी आवृत्ति अवश्य उपयोग में लाई जा सकती थी परंतु केवल अनुवाद के निमित्त मुझे उसकी कोई आवश्यकता ही न थी। बाद को जब अनुरोध किया गया कि मैं अंग्रेज़ी अनुवाद से अवश्य मिला लूँ तब मैंने आरंभ का थोड़ा सा भाग अवश्य अच्छी तरह से मिलाया किंतु सारे का सारा मिलाना व्यर्थ सा प्रतीत हुआ, क्योंकि जो अरबी इबारत आज से आठ वर्ष पहले मैं भली भाँति समझ लेता था वह मेरे लिये भला आज क्योंकर अधिक कठिन हो सकती थी। इसपर भी अंग्रेज़ी अनुवाद में कहीं कहीं की टेढ़ी तथा उलझन में डालनेवाली इबारतों को देखा तो पता लगा कि उसका अनुवाद अंग्रेज़ी में या तो किया ही नहीं गया है अथवा है तो ठीक ही नहीं है। फिर अंग्रेज़ी अनुवाद के कुछ अंश को और देखा तो कुछ त्रुटियाँ और निकलीं। परंतु यह ध्यान रहे कि अंग्रेज़ी आवृत्ति सन् १७३३ ई० अर्थात् लगभग दो सौ वर्ष पहले की छपी हुई है। उस समय को ध्यान में रखकर भली भांति स्पष्ट शब्दों में अंग्रेज़ी अनुवादक की सराहना करनी पड़ती है और स्वीकार करना

पडता है कि उस समय जो कुछ लिखा गया था वह सर्वथा पर्याप्त ही था।

केवल हिंदी संस्करण में नकशा

सुलैमान के यात्राविवरण की फ्रांसीसी अथवा अंग्रेजी आवृत्तियों में से किसी भी आवृति मे कोई नक़शा नहीं दिया गया है परंतु इसमें नक़्शा दिया जा रहा है। सच तो यह है कि यह नकशा अरबी और फ्रांसीसी की किताब 'अजायबुल हिंद' अर्थात् 'Livre Des Merveilles De L' Inde' नाम की पुस्तक के आधार पर तैयार किया गया है। उक्त पुस्तक में मूल अरबी है और नीचे मूल अरबी का फ्रांसीसी अनुवाद तथा आवश्यक टीका टिप्पणियाँ हैं। पुस्तक का अरबी भाग भारत तथा पूर्वीय ग्रहों के सबध में है। यह पुस्तक सुलैमान के विवरण के थोडे ही काल बाद लिखी गई थी। इसमें बहुत से ऐसे नाम हैं जो सुलैमान के विवरण में भी हैं, इसीके नवीन सस्करण के नक़शे ने निस्सदेह मेरे सदेहों को निश्चय रूप से दूर कर दिया है। इससे अनेक पुराने स्थानों का ठीक ठीक पता लग जायगा और भली भाँति मालूम हो जायगा कि वर्तमान समय का अमुक नाम पहले अमुक स्थान का था। विवरण में जो नाम आए हैं उनके सिवा भी कुछ और आवश्यक स्थानों के नाम नक़्शे मे दे दिए हैं जिससे स्पष्ट रूप से पता लग सके कि अमुक पुराना स्थान अमुक स्थान के

पास तथा अमुक ओर था। इस प्रकार स्थानों के विषय में जो संशय उत्पन्न हो सकता है उसका पूर्ण रूप से निवारण हो जायगा। पुस्तक पढ़ने से पहले ही यदि नक़शे को देख लिया जाय अथवा बीच बीच में पढ़ते समय आवश्यकतानुसार एक दृष्टि नक़शे पर डाल दी जाया करे तो भी पुस्तक के अवलोकन में बहुत कुछ सुगमता हो सकती है।

हिंदी संस्करण की विशेषता

मुझे अपने कार्य्य में मार्को पोलो तथा इब्नबतूता के यात्राविवरणों से बड़ी सहायता मिली है। इनमें से मार्को पोलो ने तेरहवीं शताब्दी के अंत में अर्थात् सुलैमान से लगभग पाँच सौ वर्ष बाद भारत तथा चीन में भ्रमण किया है, और चौदहवीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध यात्री इब्नबतूता ने सुलैमान के लगभग पाँच सौ वर्ष बाद भारत तथा चीन में भ्रमण किया है। इनके सिवा अन्य जितनी पुस्तकों आदि से भी सहायता मिली है और जिनके सहारे बहुत सी अपूर्व उपयोगी बातें ग्रंथ में संमिलित कर दी गई हैं यदि उनकी सूचीमात्र ही दी जाय तो केवल उसीके निमित्त कई पृष्ठ लग जायँगे। इस प्रकार नक़शे के सिवा जो बहुत सी उपयोगी बातें ग्रंथ में संमिलित की गई हैं उनमें से बहुतेरी बातें मूल सामग्री के नीचे ही दे दी गई हैं और बहुत सी परिशिष्ट भाग में दी गई हैं। सुलैमान ने चीन और भारत के संबंध में बहुत सी तुलनात्मक बातें भी दी हैं, इस कारण

आवश्यकतानुसार तुलनात्मक बातें भी बढा दी गई हैं। परंतु इस अवसर पर इस बात के जतला देने में मुझे किसी प्रकार का सकोच नहीं है कि यद्यपि मैंने यथाशक्ति उद्योग करके बहुत सी उपयोगी बातें ढूँढ ढाँढ कर एकत्र की और बहुत सी संशययुक्त समस्याओं आदि को स्पष्ट रूप से यथोचित सुलझाया तथापि कुछ नाम आदि ऐसे रह गए हैं जिनके बारे में कुछ पता ही ठीक ठीक नहीं लग सकता है कि अब वे बदलकर क्या हो गए हैं।

"मनुष्य भूल चूक का पुतला है"—ऐसा भावार्थ एक सुप्रसिद्ध अरबी कहावत का है, सो इस कार्य में यथाशक्ति कोई कसर उठा न रखने पर भी संभव है कि मुझसे केवल एक ही नहीं बल्कि कई भूल चूक हो गई हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इसके सिवा मैं स्वयं पूर्ण रूप से अनुभव करता हूँ और स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करता हूँ कि घोर परिश्रम करने पर भी कुछ बातों के सुलझाने में मुझे सर्वथा असमर्थ ही होना पडा है, परंतु विचारशील पुरुष भली भाँति जान सकते हैं कि जो बातें अनुसंधान करके लिखी गई हैं बहुत सी बातों के मुकाबिले में छूट जानेवाली बातों की मात्रा अति न्यून है। फलतः सारी बातों को दृष्टि में रखकर मैं बलपूर्वक कह सकता हूँ कि यह हिंदी संस्करण केवल अनुवाद ही से नहीं बल्कि अन्य बहुत सी बातों में भी अंग्रेजी संस्करण के मुकाबिले में निर्विवाद रूप से कहीं अच्छा है और फारसी

अनुवाद तथा संस्करण (जो सन् १८४५ ई० का छपा हुआ है) के मुकाबिले में भी नक़शे द्वारा स्थानों के ठीक ठीक परिचय देने में तो अवश्य उत्तम है और संभव है कि कुछ उपयोगी बातों के बताने में भी अधिक अच्छा ही हो, क्योंकि उस समय की तथा आज की खोज तथा विद्या-चर्चा में बड़ा अंतर पड़ गया है।

आवश्यक फुटकर बातें

सुलैमान के बाद के जो यात्राविवरण पाए जाते हैं, उनमें भी कुछ नाम ऐसे ही हैं जिनके विषय में ठीक ठीक कुछ कहा नहीं जा सकता। अनेक लेखकों ने उनकी बाबत यद्यपि बहुत कुछ लिखा है तथापि जितना ही अधिक लिखा है उतना ही मतभेद अधिक हो गया है। परंतु सुलैमान ने अनेक राज्यों तथा टापुओं के जो नाम दिए हैं उनमें से जिनकी बाबत निश्चय रूप से पता लग सका है उन्हींकी बाबत आवश्यकतानुसार थोड़ा बहुत लिख दिया गया है। अब इस ग्रंथ के बारे में यह जान लेना भी अत्यंत आवश्यक है कि मूल अरबी ग्रंथ मे कुछ बातें नहीं भी हैं क्योंकि हस्तलिखित मूल से थोड़ा सा भाग नष्ट हो चुका है। इस कारण जहाँ का अंश उपलब्ध नहीं है वहाँ फूलदार चिह्न लगा दिए हैं।

अब इस स्थान पर अपना वक्तव्य समाप्त करने से पहले

मैं यदि गवर्नमेंट आफ इंडिया की इंपीरियल लाइब्रेरी के सामयिक पुस्तकाध्यक्ष महोदय को धन्यवाद न दूँ तो एक प्रकार की कृतघ्नता होगी, क्योंकि आपने मूल अरबी ग्रंथ के विषय में मेरे साथ बड़ी उदारता दिखलाई है। साथ ही साथ इस्लामिया कालिज, लाहौर, के विद्यार्थी मुंशी फीरोज हस्सन, तथा मास्टर श्रीयुक्त कालीचरण सिंह जी को भी धन्यवाद देना परम आवश्यक समझता हूँ, क्योंकि आप लोगों ने ग्रंथ की खोज तथा प्राप्ति में मेरा बहुत कुछ हाथ बँटाया है। इनके सिवा अंत में अंत में उन सारे महानुभावों को भी हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिनकी कृपा से इस ग्रंथ में कुछ उपयोगी बातों की वृद्धि हो सकी है।

अनुवादक।

सुलैमान सौदागर का यात्राविवरण।

पहला खंड।

× × × × × ×

भारतीय महासागर, अरब तथा चीन संबंधी बातें

—०—

द्वीप और उनमें समुद्री वस्तुएँ

× × × × × ×

हरकंद[1] नाम का सागर तीसरा सागर है। इसके और दलारोवी[2] नामक सागर के बीच में बहुत से द्वीप[3] हैं

---

(१) हरकंद—समुद्र का वह भाग जो कि आज कल 'बंगाल की खाड़ी' कहलाता है। उसका अधिकांश भाग तथा उसके साथ ही पूर्वीय घाट के पूर्व का समुद्री भाग और नीचे की ओर लंका तक का सारा जल हरकंद के नाम से विख्यात था।

(२) दलारोवी—वर्तमान समय में जो 'खंभात की खाड़ी' है उससे लेकर लंका के नीचे तक 'दलारोवी सागर' की सीमा थी। पश्चिमी घाट के पश्चिम का समुद्री भाग दलारोवी के ही अंतर्गत था।

(३) द्वीपों का नाम बिल्कुल ही नहीं दिया गया, परंतु हरकंद और दलारोवी सागरों की सीमा का जो पता चलता है, उससे स्पष्ट नतीजा निकलता है कि निस्संदेह द्वीपों से माल्द्वीप व लकद्वीप नामी टापुओं से ही अभिप्राय है। साथ ही इसके एक और बात जान लेने योग्य यह भी है कि इन्हीं टापुओं के बयान के पश्चात् ही लेखक ने लंका का वर्णन किया है। माल्द्वीप के विषय में देखो परिशिष्ट १—'मालद्वीप'।

यहां तक कि इनकी संख्या १९०० बतलाई जाती है और वास्तव में इन्हीं द्वीपों के कारण दलारोवी और हरकंद सागरों के बीच में अंतर हो गया है[1]। ये द्वीप एक स्त्री के अधिकार में हैं। अंबर इन द्वीपों में बहुत ही बड़ा बड़ा पाया जाता है। अंबर के छोटे छोटे टुकड़े पौधों के समान अथवा पौधों से मिलते जुलते हुए पाए जाते हैं। जिस प्रकार इस पृथ्वी पर पौधे उगते हैं ठीक उसी तरह अंबर समुद्र की तह में पैदा होता है। जब समुद्र में बड़ी तेज़ी के साथ उबाल आता है तो वह तेज़ उबाल खुंबी तथा कुकुरमुत्ता के समान अंबर

---

(१) अरबी की जो हस्तलिखित मूल पुस्तक पाई जाती है उसमें प्रारंभ का अंश खंडित है। नष्ट हुए अंश में क्या था अथवा कितना अंश नष्ट हुआ है, इस विषय में ठीक ठीक सर्वथा कुछ कहा ही नहीं जा सकता, परंतु अब आरंभ में जो यह वर्णन है कि 'हरकंद' नाम का सागर तीसरा सागर है, इससे साफ़ पता चलता है कि लेखक ने इससे पहले निस्संदेह दो और सागरों की बाबत लिखा होगा। अस्तु हरकंद का हाल देते हुए लेखक ने दलारोवी की जो चर्चा की है उससे बलपूर्वक कहा जा सकता है कि दूसरा सागर जिसका वर्णन लेखक ने अपने ग्रंथ में किया होगा वह अवश्य दलारोवी ही होगा। लेखक फ़ारस का था। फारस और भारत के बीच में अरब सागर पड़ता है। इस कारण लेखक ने जिस सागर का वर्णन पहले सागर के नाम से किया होगा वह फ़ारस की खाड़ी तथा सागर या अरब का सागर रहा होगा। इस प्रकार तीनों सागरों का प्रकरण मिल जाता है।

को समुद्र की तह से निकालकर किनारे पर लाकर डाल देता है[१]।

द्वीप विषयक अन्य बातें

ये द्वीप जो एक स्त्री के अधिकार में हैं बिलकुल नारियल के वृक्षों से भरे पड़े हैं। ये एक दूसरे से एक, दो, तीन अथवा चार फरसग[२] की दूरी पर हैं, सबमें मनुष्य बसते हैं और नारियल के बहुत से वृक्ष हैं। यहाँ के लोगों की संपत्ति कौड़ी है, यहाँ तक कि राजेश्वरी के कोष में भी कौड़ियाँ ही होती हैं। लोग कहते हैं कि इन द्वीपों के निवासियों से बढ़कर कोई और कारीगर होता ही नहीं, क्योंकि वे नारियल[३] की छालों की पूरी कमीज, बाँह, कली और जेब सहित सब एकहीं साथ बना लेते हैं। वे नौकाएँ और घर भी इन्हीं वृक्षों से बना लेते हैं। इनके अतिरिक्त वे लोग कारीगरी के कार्यों में भी चतुर हैं। जब पानी

---

(१) अंबर के विषय में विशेष विवरण के लिये परिशिष्ट क अंक २ देखिए।

(२) फरसख से यदि फरसंग' (فرسنگ) मतलब है, तो ज्ञात हो कि एक फरसंग में तीन मील होते हैं। अंग्रेजी में फरसख को 'लीग' कहते हैं।

(३) भारतीय महासागर के लगभग सारे टापुओं में नारियल बहुत होता है और यह टापू के निवासियों के निमित्त बड़ा उपयोगी होता है। देखो परिशिष्ट—३, 'नारियल'।

के ऊपर जीवित कौड़ियाँ आ जाती हैं तो लोग नारियल की डालियों को पानी में फेंक देते हैं, उस समय कौड़ियाँ उनमें चिपट जाती हैं। वे लोग इन कौड़ियों को 'कबतज' कहते हैं[1]।

लंका द्वीप

इन द्वीपों के बाद दूसरा टापू सरनदीब[2] अर्थात् सरनद्वीप है। हरकंद सागर में जो द्वीपसमूह 'दबैजात'[3] कहलाते हैं उन सबमें तथा इन द्वीपों में यह टापू प्रधान है। लंका के चारों ओर समुद्र है। इसमें कई स्थान ऐसे हैं जहाँ से मोती निकाले जाते हैं[4]।

---

(१) कौड़ियों के विषय में अधिक देखो परिशिष्ट—४, 'कौड़ियाँ'।

(२) सरनदीब अर्थात् सरनद्वीप का अभिप्राय लंका टापू से है, जिसके नाम से अशिक्षित भी अपरिचित नहीं हैं। लंका को सिंहलद्वीप अथवा सिलोन भी कहते हैं। परंतु अरबी ग्रंथों में सरनदीब (سرندیب) शब्द का ही प्रयोग पाया जाता है। अरबी भाषा में 'प' अर्थात 'पे' (پ) अक्षर नहीं होता, उसके स्थान पर 'ब' अर्थात 'बे' (ب) से काम लिया जाता है। अतः न्यून परिवर्तन के बाद सरनद्वीप शब्द से सरनदीब शब्द बन गया है। सौंदर्य्य के कारण लंका 'समुद्र का हीरा' भी कहा जाता है।

(३) ईस्ट इंडीज़ आयलैंडस को दबैजात (دبیجات) कहा गया है।

(४) लंका के पास समुद्र से आज कल भी मोती निकाले जाते हैं।

परम पितामह बाबा आदम का पग-चिह्न

लंका द्वीप ही की भूमि मे रोहोन[१] नाम का एक पर्वत है। उसी पर पूज्य बाबा आदम (स्वर्ग से) उतरे थे। उनके एक पग का चिह्न उस पर्वत की चोटी पर एक पत्थर की चट्टान मे अंकित पाया जाता है। इस पर्वत की चोटी पर उनके एक ही पग का चिह्न है और कहा जाता है कि पूज्य बाबा आदम ने दूसरा पग समुद्र में रक्खा था। लोगो का कथन यह भी है कि वह पग-चिह्न जो पर्वत की चोटी पर है लगभग सत्तर हाथ (लंबा) है[२]। इस पर्वत के समीप लाल पीले और नीले रत्नों की खानें हैं। इस टापू में दो राजा हैं। यह टापू बहुत लंबा चौड़ा है। इसमें सुगंधित लकड़ियाँ,[३] सोना और अमूल्य पत्थर पाए जाते हैं। समुद्र से मोती निकाले जाते हैं। और शंख[४] भी पाए जाते हैं। शंख वास्तव में एक

---

(१) सिंहाली ग्रंथों में दक्षिणी लंका का नाम भी रोहोन लिखा है। रोहोन पहाड़ को आज कल "कोह-आदम" (كوه آدم)अर्थात् आदम का पर्वत कहते हैं। संस्कृत लेखकों ने इस पर्वत का नाम रोहणाचल लिखा है जहां से रत्न निकलते थे।

(२) पूज्य बाबा आदम के पगचिह्न के संबंध के विशेष रूप से परिशिष्ट, अंक ५ में लिखा गया है। इस संबंध की कई बातें अति मनोरंजक हैं।

(३) देखो परिशिष्ट—६, 'सुगंधित लकड़िया अर्थात् ऊद' (عود)।

(४) देखो परिशिष्ट—७, 'शंख'।

प्रकार की करनाई है जिसको कि यहां के लोग फूँक मार कर बजाते हैं और बहुत अमूल्य समझते हैं।

रामनी नाम का एक बड़ा टापू

इसी (हरकंद) सागर में (चीन की तरफ़ से) लंका की ओर आते हुए बहुत से टापू पड़ते हैं, परंतु बड़े बड़े टापुओं की संख्या बहुत ज़्यादा नहीं है। इन्हींमें से एक का नाम रामनी[२] है। उसमें कई राजा हैं। उसका फैलाव आठ अथवा नौ सौ फरसख़ का बतलाया जाता है। उसमें सोने की खानें हैं, और उस चीज़ की भी खानें हैं जिसको लोग 'फ़न्सूर'[३] कहते हैं। वह वास्तव में एक बढ़िया क़िस्म का कपूर होता है।

---

(१) अरबी के मूल पाठ में 'बूक़' (بوق) शब्द है। वह करनाई, सरनाई, नफ़ीरी, तुरही, नृसिंहा आदि का भी सूचक हो सकता है।

(२) रामनी को अब सुमात्रा कहते हैं।

(३) फ़न्सूर वही वस्तु है जिसको भीमसेनी कपूर कहते हैं। सुलैमान का लेख इस बात का सूचक है कि यह खान से निकलता है, परंतु निर्विवाद रूप से संदेहरहित ठीक ठीक बात यह है कि भीमसेनी कपूर अथवा किसी प्रकार का भी कपूर किसी स्थान से भी खान से नहीं निकलता। वास्तव में यहां सुलैमान की भूल पाई जाती है। इसी प्रकार इस संबंध में अनेक लोगों ने भी सर्वथा बहुत भूल की है। देखो परिशिष्ट—८, 'कपूर'।

नियान नामी टापू

इस मागर के सारे टापू एक दूसरे से निलकुल मिले जुले हैं। इनमें से नियान[1] नाम के एक टापू मे सोना वहुत ज्यादा होता है। वहा के निवासियों का भोजन नारियल है। नारियल से ही वे लोग अपने शरीर का वनाव सिंगार करते हैं और उसीका तेल शरीर पर मलते हैं।

शत्रु वध से विवाह संस्कार

इस देश (टापू) वासियो में से जब कोई मनुष्य इस वात का इच्छुक होता है कि विवाह करे तव वह उस समय तक विवाह का अधिकारी नहीं समझा जाता जब तक कि वह अपने शत्रुओ में से किसी मनुष्य के सर की खोपडी प्राप्त न कर ले। इस प्रकार जब वह अपने दो शत्रुओं का वध करता है तो दो स्त्रियों के साथ विवाह करने का अधिकारी हो जाता है, यहाँ तक कि यदि वह पचास शत्रुओ का वध करे तो पचास खोपडियो के कारण पचास स्त्रियों से शादी कर सकेगा। इस प्रथा का कारण यह है कि उनके शत्रु वहुत से हैं। अत जो उनके वध मे वहुत ज्यादा भाग लेता है वह उनमें अति श्रेष्ठ गिना जाता है।

---

(१) सुमात्रा के पूर्व में नियास नामी एक टापू है। नियान का संकेत उसी की ओर मालूम होता है।

चाँदी की खानोंवाला टापू

यहाँ से कुछ आगे सीधे मार्ग से कुछ दूरी पर पहाड़ अर्थात् पहाड़ी टापू हैं। लोग बतलाते हैं कि उनमें चाँदी की खानें हैं। सीधे जहाज़ी मार्ग के न होने के कारण प्रत्येक जहाज़ यहाँ नहीं पहुँच सकता। यहाँ खशनई नाम का ए पहाड़ है। एक बार ऐसा हुआ कि एक जहाज़ इस टापू के निकट से गुज़रा, लोगों ने एक पहाड़ देखा तो वहाँ जाने का विचार किया। जब प्रातःकाल का समय हुआ तो एक नौका किनारे पर भेजी गई कि कुछ लोग लकड़ी काट लावें। पर जब उन्होंने अग्नि प्रज्वलित की तो चाँदी बहने लगी। ऐसा देखकर वे लोग जान गए कि यहाँ चाँदी की खान है सो उन्होंने मनमानी चाँदी वहाँ से भर ली पर जब वे चले तो समुद्र में बड़ा तूफ़ान उठा, ऐसा होने पर सबकी सब चाँदी उन्होंने समुद्र में फेंक दी। इसके पश्चात् लोगों ने फिर उस पहाड़ तक पहुँचने की तैयारी की किंतु वह स्थान उन्हें मिला ही नहीं।

सागर के असंख्य टापू

इसी टापू के समान सागर में अन्य बहुत से टापू हैं यहाँ तक कि उनकी गणना असंख्य है। इन्हींमें से ऐसे भी टापू हैं जिनमें पहुँचना भी अति दुस्तर है और अनेक ऐसे भी हैं कि माँझियों को उनके विषय में अभी तक कुछ मालूम ही नहीं है।

बादल में लंबी पतली जीभ

इसी सागर के विषय में बहुधा यह भी बतलाया गया है कि इस सागर मे सफेद बादल जहाजों पर साया डाल देता है। फिर लबी पतली जीभ उससे बाहर निकलती है और समुद्र के जल तक पहुँचती है। उस समय समुद्र का जल आँधी के चक्करदार खभे के समान ऊपर उठता है[1]। यदि कोई जहाज इस उबाल मे आ पडता है तो वह नष्ट हो जाता है। इसके पश्चात् बादल ऊपर उठ जाता है और खूब बरसता है। मैं नहीं जानता कि यह बादल पानी को समुद्र से खींच लेता है अथवा इसमें क्या रहस्य है।

पानी में वायु की प्रचंडता

इन समुद्रों में से प्रत्येक में प्रचड वायु के कारण जल में बहुत उफान तथा उबाल उठा करते हैं यहाँ तक कि समुद्र का जल हॉडियो के समान उबलता है। फिर जो कुछ समुद्र मे होता है वह निकलकर टापुओं के किनारे आ पडता है, यहाँ तक कि जहाज भी उससे टकरा कर टूट जाते हैं। बडी बडी मुर्दा मछलियाँ भी किनारे आ पडती हैं। कभी कभी पहाड और चट्टानें इस प्रकार किनारे पर आ पडी हैं जैसे तीर कमान से निकलकर गिरता है। हरकद सागर मे जो वायु

(१) यह प्रकृति की एक साधारण घटना है जो प्राय समुद्रों में हुआ करती है।

चलती है वह पश्चिम से सप्तर्षि तारों (उत्तर) की ओर चलनेवाली वायु नहीं है, परंतु उससे भी समुद्र में बड़ा उबाल पैदा हो जाता है, यहां तक कि समुद्र हाँड़ियों के समान खौलता है और वायु बहुत से अंबर को समुद्र से निकाल कर किनारे पर ला फेंकती है, परंतु समुद्र जितना ज़्यादा गहरा तथा नीचा होता है उतना ही ज़्यादा अंबर अधिक बढ़िया होता है। हरकंद सागर की लहरें जब बहुत ऊँची उठती हैं तब अग्नि के समान चमकती हैं। इसी सागर में 'लोख़म' नाम की एक शिकारी मछली होती है, वह मनुष्यों को लील(निगल) जाया करती है।

× × × × × × × × × × × × × × × × × ×

चीन का ख़ानफ़ू नगर

× × × × × ×

सो वस्तुएँ कम मिलती हैं। ख़ानफ़ू[1] (चीन देश) में प्राय: अग्नि के लग जाने के कारण वस्तुओं की कमी हो जाती है।

---

(१) ख़ानफ़ू (خانفو) चीन में यांगटिसीक्यांग नदी के दहाने पर एक बड़ा नगर तथा बंदर था। अब यह कानफू नाम से प्रसिद्ध है परंतु इसका बंदरगाह समुद्र के प्रकोप से नष्ट हो चुका है। इसका वर्णन कई प्राचीन ग्रंथों में पाया जाता है। अबूज़ैद सीराफ़ी कहता है कि ख़ानफ़ू को एक बार राजद्रोहियों ने लूट लिया और डेढ़ लाख मुसलमान तथा अन्य विदेशी जिनमें यहूदी और ईसाई भी संमिलित थे स्वर्ग को पहुँचाए गए। इससे भली भांति अनुमान किया जा सकता है कि कितने व्यापारी ख़ानफ़ू तथा चीन में जाते थे।

इसके अतिरिक्त अन्य कारण भी हैं जिनसे वस्तुओं की द्रुधा कमी हो जाया करती है। इस नगर में जहाज ठहरते हैं। अरब और चीन वासियों के व्यापार का यह केंद्र है। आग भी यहाँ बहुत लगा करती है, कारण यह है कि यहाँ के लोगों के घर लकडी अथवा चिरे हुए बाँसो[1] के बने हुए हैं। वस्तुओं की कमी हो जाने का एक कारण यह भी है कि आने जानेवाले जहाज टूटफूट भी जाया करते हैं। आने जानेवाले जहाजो का नुकसान यों भी हो जाता है कि वे या तो लूट लिए जाते हैं अथवा किसी लगरगाह में अधिक काल तक ठहरने के लिए विवश हो जाते हैं। ऐसी अवस्था के होने के कारण अरब के व्यापारी (चीन तक न पहुँच सकने पर) अपना माल अरब को छोड किसी अन्य देश मे ही बेच डालते हैं। और जब वायु उनको अरब के यमन नामी भाग अथवा अरब के अन्य किसी भाग में उडा ले जाती है तो लोग वहाँ अपना माल असबाव बेंच डालते हैं। परतु कभी कभी लोग अपने जहाजों को ठीक करने के निमित्त अथवा अन्य किसी कारण से (खानफू में) बहुत काल तक ठहरे रहते हैं।

चीन के खानफू नगर का मुसलमान क़ाज़ी

सुलैमान सौदागर का कथन है कि व्यापार के केंद्र खानफू में अपने स्वधर्मियों के लिए एक मुसलमान काजी

(१) चीन में बाँस तथा उनकी उपयोगिता के विषय में देखो परिशिष्ट-१२, 'चीन में बाँस'।

नियत है। उसकी नियुक्ति चीन के राजा की ओर से है। वह उन सब मुसलमानों का जो इस भाग में आते हैं क़ाज़ी (न्यायाधीश) है। वह ईद के दिन सारे मुसलमानों को नमाज़ पढ़ाता है, सदुपदेश देता है और मुसलमानों के राजा के लिये आशीर्वाद देता है। निस्संदेह इराक देश के व्यापारी भी इस क़ाज़ी को पूर्ण रीति पर अपना क़ाज़ी समझते हैं और इसकी आज्ञाएँ जो ईश्वरीय ज्ञान, कुरान शरीफ़, तथा मुसलमानी धर्म्म की आज्ञाओं के अनुसार होती हैं सहर्ष पाली जाती हैं।

अरब सागर के स्थान तथा समुद्री मार्ग

उन स्थानों के विषय में जहाँ जहाज़ जाते हैं अथवा जहाँ से होकर गुज़रते हैं लोगों का कथन है कि चीन के

---

(१) चीन में मुसलमानी धर्म्म पूर्व और पश्चिम दोनों से पहुँचा है। अरब के जो व्यापारी समुद्री मार्ग से पूर्व में पहुँचे उनकी बदौलत वह पूर्व में पहुँचा और जो लोग विजय की पताका उठाए हुए पश्चिम की ओर से प्रविष्ट हुए उनकी बदौलत उधर फैला। इस प्रकार चीन में इस समय कई करोड़ मुसलमान हैं और दिन प्रति दिन इनकी संख्या वहाँ खूब बढ़ भी रही है। एक रूसी लेखक का मत है कि आश्चर्य नहीं कि कुछ काल बाद सारा चीन मुसलमान हो जाय। मुसलमानों को यहाँ केवल धार्म्मिक स्वतंत्रता ही प्राप्त नहीं है बल्कि राज्य की ओर से फ़ौजी और नागरिक दोनों विभागों में उनके लिये स्थान खुले पड़े हैं।

बहुतेरे जहाज सीराफ[1] (फारस देश) में माल लादते हैं। सीराफ में ही बसरा, उम्मान तथा अन्य स्थानों की चीजें आजाया करती हैं। इसके सिवा यह भी बात है कि (फारस की खाडी तथा अरब) सागर में बहुत से तूफान आते हैं और कई स्थानो में पीने के लिये पानी की बडी कमी रहती है।

सीराफ से बसरा १२० फरसख की दूरी पर (समुद्री मार्ग से) है। सौदागर लोग जब बसरा में माल लादते हैं तब यहीं से पानी भी ले लेते हैं। इनके पश्चात् लोग वहाँ से रफूचक्कर होते हैं और बाद को उस स्थान का मार्ग लेते हैं जो कि मसकत के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान उम्मान (अरब) प्रांत के अंतिम भाग में है और सीराफ से यह स्थान २०० फरसख की दूरी पर है।

फारस की खाडी के पूर्वीय भाग मे सीराफ और मसकत के बीच (अरब देश) में नफाक समुदाय के लोगों का सैफ नाम का एक नगर है। इसी सागर अथवा खाडी के पूर्वीय भाग में ही कावा बराजों का एक टापू है। इनके सिवा उम्मान नाम के पहाड भी हैं, इनमें एक स्थान दोरदुर कहलाता है। यह वास्तव में दो पहाडों (या दो पथरीली चट्टानो) के बीच मे एक बडा तग समुद्री मार्ग है जिसमें से केवल छोटी

(१) सीराफ (سیراف) का बंदरगाह फारस के प्रसिद्ध नगर शीराज से दक्षिण तथा कुछ पश्चिम के कोने पर था। नकशे से ठीक स्थान का पता लग सकता है।

छोटी नौकाएं गुज़र सकती हैं और चीनी नौकाओं (तथा जहाज़ों) का गुज़र नहीं हो सकता। यहीं पर कुसैर और ओवैर नाम के दो पहाड़ भी हैं। वे प्रायः समुद्र में ही डूबे रहते हैं और बहुत ही कम जल के ऊपर दीख पड़ते हैं। हम लोग जब पहाड़ों को पार कर चुकते हैं तब सोहार[1] नाम के स्थान में जाना होता है। फिर मसक़त में कुँओं का पानी भर लेते हैं। यहीं (मसक़त में) उम्मान की बकरियां भी मिल जाती हैं।

अरब और चीन का समुद्री मार्ग

अरब देश के मसक़त स्थान से ही भारत के लिये जहाज़ छूटते हैं। ये जहाज़ सबसे पहले कोलममली[2] में पहुँचते हैं। वायु के साधारण होने की अवस्था में मसक़त से कोलममली का रास्ता एक मास का है। कोलममली वास्तव में इसी नाम के प्रांत में सीमांत स्थान है और शस्त्रालय अर्थात् फ़ौजी छावनी भी है। यहां चीनी जहाज़ आते हैं। यहां के कुँओं का जल बड़ा मीठा होता है। चीनियों से

---

(१) सोहार (صحار) नाम का स्थान उम्मान की खाड़ी में मसक़त और उर्मुज़ के जल डमरूमध्य के बीच में है।

(२) कोलम को कोलममली अथवा कोकममली भी लिखा गया है। आजकल इसको क्विलोन कहते हैं। ट्रांवकोर राज्य में आज भी यह एक प्रधान नगर तथा बंदर है। देखो परिशिष्ट—१२. 'कोलम'।

पानी के बदले एक हजार दिरहम[1] और अन्य लोगों से एक से लेकर दस दीनार[2] (अशरफी) तक लिए जाते हैं।

हरकद सागर का एक टापू

कोलममली से हरकद का मार्ग भी मसकृत से कोलम-मली के समान लगभग एक मास का है। कोलममली में पानी लेकर जहाजी लोग हरकद का मार्ग पकड़ते हैं। हरकद को डॉककर लेजबालूस नाम के टापू में पहुँचते हैं। यहाँ के निवासी न तो अरबी भाषा ही समझते हैं और न सौदागरों की दूसरी भाषा ही समझ पाते हैं। वस्त्र बिलकुल नहीं धारण करते। रंग के गोरे चिट्टे हैं। और युवा अवस्था में भी इनके डाढ़ी नहीं आती है।

लोग कहते हैं कि इनकी स्त्रियाँ कभी दिखलाई ही नहीं पड़ीं। ये लोग केवल एक लकड़ी को बीच में से खोदकर छोटी सी नौका बना लेते हैं। उसीमें सवार होकर हमारे पास आते हैं। इनके पास नारियल, केला, ऊख, और नारियल का जल होता है। नारियल का जल सफेद होता है। जिस समय वह नारियल से निकाला जाता है यदि

(१) एक दिरहम (درهم) का मूल्य वर्त्तमान समय के ढाई आनों के बराबर ठहरता है।

(२) दीनार (دينار) को अशरफ़ी समझना चाहिए।

वह उसी समय पिया जाय तो शहद के समान मीठा होता है, यदि कुछ देर पड़ा रह जाता है तो मदिरा बन जाता है, कुछ अधिक काल तक पड़े रहने पर सिरका बन जाता है। इसको ये लोग लोहे के बदले में देते हैं।

अनेक बार ऐसा भी हुआ है कि उन्हें अंबर का कोई टुकड़ा मिला तो उन्होंने एक लोहे के टुकड़े के बदले अंबर का टुकड़ा दे दिया है। ये लोग कोई भी भाषा नहीं समझते, इस कारण हाथ के इशारों से ही लेन देन करते हैं। परंतु व्यवहार में बड़े चतुर होते हैं, यहाँ तक कि अनेक बार ये लोग नए सौदागरों से माल झटक कर ले गए, पर उनको कुछ भी न दे गए।

कलाहवार

लंजबालुस से जहाज़ कलाहवार[1] का मार्ग पकड़ते हैं। इसी नाम का एक राज्य भी है। बार शब्द का प्रयोग प्रत्येक तट के लिये किया जाता है। यहाँ का राज्य वास्तव में ज़बज[2] के अधीन है जो भारत की दाहनी (पूर्व) ओर है। यहाँ (कलहवार) के निवासी छोटे बड़े सब के सब एक ही तरह को वस्त्र धारण करते हैं। जहाज़ी लोग प्रायः यहाँ से पानी लेते

(१) एक फ्रांसीसी लेखक इस स्थान को मलाया प्रायद्वीप के पश्चिमी तट पर बतलाता है और वास्तव में यह बात ठीक भी है।

(२) जावा द्वीप को ज़बज (زبج) कहते थे।

हैं। यहाँ के कुओं का पानी बडा मीठा होता है। नगर-निवासी कुँओं के पानी को चश्मों तथा वर्षा के पानी से श्रेष्ठ समझते हैं। इस स्थान का मार्ग हरकद से एक मास का है और हरकद का मार्ग कोलममली से एक मास के लगभग है।

वतूमा,कदरंज और संफ

कलाहबार से जहाज उस स्थान में पहुँचते हैं जो कि वतूमा[१] के नाम से विख्यात है। सारा सफर लगभग दस दिनों का है। यदि कोई चाहे तो यहाँ भी मीठा पानी मिल जाता है। इसके बाद दस दिन के मार्ग की दूरी पर कदरज[२] नाम का एक स्थान अथवा टापू है। यहाँ भी मीठा पानी पर्याप्त है। निदान जिस प्रकार इन टापुओं में मीठा पानी पाया जाता है उसी तरह भारतीय सागर के सारे टापुओं मे कुओं के खोदने से मीठा जल मिल जाता है।

कदरज नामी टापू मे एक बडा ऊँचा पहाड है। इसमें प्राय भागे हुए दास तथा चोर बसे हैं। इस टापू के बाद

---

(१) इसकी स्थिति सिंहापुर के दक्षिणी भाग में कुछ पूर्वीय कोने पर ठहरती है। वास्तव में यह एक छोटा सा टापू है।

(२) स्याम की खाडी के दक्षिणी भाग अर्थात् मलाया प्रायद्वीप के पूर्व में परस्पर मिले जुले पास ही पास कई टापू हैं, उन्हीमें से एक की ओर संकेत है।

दस दिन के मार्ग की दूरी पर संफ[1] नामी स्थान है। वहां का जल भी मीठा होता है। सुप्रसिद्ध सुगंधित संफी ऊद (लकड़ी) वहीं से लाई जाती है। वहां एक राजा है। लोग गेहुँए रंग के होते हैं और दो वस्त्र धारण करते हैं।

संदरफुलात, संजी और चीन के फाटक

संफ से दस दिन की दूरी पर संदरफुलात[2] नामी टापू है। वहाँ से पानी लेकर जहाज़ी लोग यहीं का मार्ग पकड़ते हैं।

---

(१) चीन के दक्षिणी भाग (ब्रह्मा के पूर्व) की भूमि जो अब स्याम कहलाती है, पहले चंपा नाम से प्रख्यात थी। उसी चंपा को सुलैमान ने संफ (صنف) लिखा है। कारण यह है कि अरबी में 'च' (چ) का अभाव होने से उसके बदले 'स' अर्थात् 'साद्' (ص) का प्रयोग होता है, जैसे चीन को सीन (صين) लिखते और बोलते हैं। और 'प' (پ) के स्थान की पूर्ति 'फ़' (ف) से भी की जाती है जैसे कानपूर को अरबी में कानफ़ूर लिखा जाता है। इस प्रकार अति न्यून परिवर्तन से चंपा को 'संफ़' लिखा है। ऐसा भी मालूम होता है कि कंबोडिया का एक बड़ा भाग भी चंपा में संमिलित था। पूर्व की ओर मीकांग नदी तक चंपा की सीमा थी। मीकांग की पूर्वीय भूमि (एनाम राज्य) का नाम कमार (قمار) था। इसीका वर्णन कई अरबी ग्रंथों में है।

(२) संदरफुलात के विषय में ऐसा मालूम होता है कि संदरफुलात शब्द जिस शब्द के निमित्त लिखा गया है उसमें 'स' अर्थात् 'साद्' के स्थान पर 'च' और 'फ' के बदले 'प' का उच्चारण अवश्य था, क्योंकि जिस प्रकार चंपा के बदले संफ लिखा गया है उसी प्रकार संभवतः इसमें भी परिवर्तन हुआ होगा।

यहाँ का भी जल मीठा है। यहाँ के बाद सजी सागर[1] में आना पड़ता है। फिर तो चीन के फाटक ही हैं, किंतु चीन तक पहुँचने से पहले कई पथरीली चट्टानें तथा पहाड़ पड़ते हैं और प्रत्येक दो पहाड़ों के बीच से ही मार्ग है जिससे कि जहाज गुजरते हैं। जहाज जब सदरफुलात से सुरक्षित निकल जाते हैं तब एक मास में चीन पहुँच जाते हैं। परंतु चट्टानों से गुजरने का मार्ग पूरे सात दिन का है। जहाज जब कि चीन के फाटकों से गुजर जाता है तो ज्वार-भाटे के पानी में (अर्थात् तट के पास) प्रविष्ट हो जाता है, फिर चीन देश के ऐसे स्थान में पहुँच जाता है जहाँ का जल अच्छा होता है और जहाँ जहाज खड़े होते हैं।

चीन और बंदरगाह खानफू का हाल

चीन का वह स्थान जहाँ जहाज लंगर डालते हैं वास्तव में खानफू के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ तथा चीन के अन्य

सदरफुलात को आज कल पुलोकांडर कहते हैं। फुलात का अर्थ 'टापू' है। कांडर के नाम से छोटे बड़े दो टापू हैं। पुलोकांडर शब्द को यदि कांडरपुलो से उल्टा हुआ समझा जाय और फुलात को पुलो का बहुवचन माना जाय तो कोई आपत्ति नहीं मालूम होती और कांडर पुलो (चंदरपुलो) और सँदरफुलात दोनों के दोनों शब्द एक ही से ठहरते हैं। यह टापू 'कोचीन' चीन से दक्षिण की ओर है।

(1) टांकिन-खाड़ी अर्थात् दक्षिणी चीन सागर का उत्तरीय भाग सजी सागर कहलाता था।

सारे नगरों में भी नदियों तथा चश्मों का पानी मीठा होता है। इसके प्रत्येक भाग में बाज़ार हैं, और ये भली भाँति सुरक्षित हैं। सारे नगरों में शस्त्रालय और बड़ी बड़ी सड़कें हैं। खानफू में रात और दिन में दो बार जुआर-भाटा आता है। परंतु जुआर की अवस्था वैसी नहीं होती है जैसी बसरा और कावान वंशवालों के टापू के बीच में होती है अर्थात् जब चंद्रमा आकाश के मध्य में आ जाता है तब जुआर उत्पन्न हो जाता है। पर जब चंद्रमा उदय होता तथा डूबता है उस समय भाटा होता है। चीन के निकट से कावान वंशजों के टापू के निकट तक चंद्रमा के उदय होने के समय जुआर उत्पन्न हो जाया करता है, पर जब चंद्रमा मध्य आकाश में आ जाता है तो भाटा और जब डूबता है तो जुआर, बाद को जब बिलकुल ही डूब जाता है तो पानी उतर जाता है।

मुलजान का टापू

लोगों का कथन है कि भारतीय महासागर के पूर्वीय भाग में लंका और कलाह के बीच में मुलजान नामी एक टापू है। वहाँ के लोग काले कलूटे होते हैं और सदैव नंगे ही रहा करते हैं। वे लोग जब किसी प्रवासी मनुष्य को पा जाते हैं तब उसे उलटा टाँग देते हैं, फिर उसे काटकर कच्चा ही हड़प कर जाते हैं। उनकी संख्या कुछ कम नहीं। वे एक ही टापू में रहते हैं। उनका कोई बादशाह नहीं।

उनका भोजन मछली, केला, नारियल और गन्ना है। वहाँ जगल और झीलें भी हैं।

उड़ने और नारियल पर चढ़ जानेवाली मछलियाँ आदि

लोग वतलाते हैं कि भारतीय महासागर के एक भाग में छोटी छोटी उडनेवाली मछलियाँ होती हैं। ये पानी के ऊपर उडती हैं और इनको लोग पानी की टीडी कहते हैं। इनके सिवा इसी सागर में एक प्रकार की मछलियाँ और बतलाई जाती हैं। वे पानी से निकलकर नारियल के वृक्ष पर चढ जाती हैं और नारियल का पानी पीकर फिर समुद्र में लौट जाती हैं। लोग यह भी कहते हैं कि इसी सागर में एक जतु केंकडे के समान होता है। जब वह पानी से निकाल लिया जाता है तो पत्थर सा हो जाता है। एक मनुष्य ने बतलाया कि उससे एक प्रकार का सुरमा निकाला जाता है जो कि आँख के कई रोगो के लिये लाभदायक होता है[1]।

इसके सिवा लोगो का यह भी कथन है कि जवज (जावा द्वीप) के निकट एक पहाड है, उसको अग्नि का पहाड कहते हैं। कोई मनुष्य उसके समीप नहीं जा सकता। दिन में उससे धुआँ निकलता है। रात में अग्नि की प्रचड लपटें उठती हैं।

---

(१) ऐसा ही जतु हनान टापू की एक झील में पाया जाता है। पुर्तगीज इसका प्रयोग ज्वर में करते हैं।

उसके नीचे से एक तो मीठे ठंढे पानी का चश्मा निकलता है, दूसरा मीठे गर्म पानी का ।

चीनियों के वस्त्र

चीन के सारे लोग गर्मी और जाड़ा दोनों में रेशम ही पहनते हैं[1] । बादशाह लोग बढ़िया किस्म का रेशम पहनते हैं और बाकी अन्य लोगों का पहरावा उनकी स्थिति के अनुसार होता है । जब जाड़े का मौसिम होता है तो एकही मनुष्य दो, तीन, चार, पाँच अथवा इनसे भी अधिक पाजामे अपनी शक्ति के अनुसार डाँट लेता है । सर्दी के भय से वे लोग खूब नीचे तक कपड़ा पहिनते हैं । गर्मी में लोग केवल एक ही रेशमी कमीज़ अथवा इसी प्रकार का कोई अन्य वस्त्र धारण करते हैं और साफा बिलकुल नहीं बाँधते ।

चीनियों का खान पान

चीनी लोग चावल खाते हैं । प्रायः लोग चावल के सिवा कोशान (कढ़ी के ढंग की पतली वस्तु) भी पकाते हैं । फिर उसको चावल में डालकर खाते हैं । बादशाह लोग गेहूँ की रोटी तथा सारे पशु पक्षियों का मांस खाते हैं, यहाँ तक कि सुअर और अन्य जंतुओं को भी नहीं छोड़ते । यहाँ के फल सेब, आड़ू, नीबू, अनार, बिही, अमरूद, केला, गन्ना, खरबूजा, इंजीर, अंगूर, ककड़ी, खीरा, झरबैला, अखरोट,

(१) चीन में रेशम के विषय में देखो परिशिष्ट—१४, 'चीनमें रेशम'।

बादाम, जलोज (جلوز), पिस्ता, आलूबुखारा, खूबानी, गुबैर अर्थात् सजद, और नारियल[1] हैं। खजूर के वृक्ष यहाँ अधिक नहीं हैं, केवल एक मनुष्य के घर में कुछ अपने वृक्ष हैं।

चीनियों में शराब का चलन नहीं

चीनियों के देश में शराब नहीं होती। वे लोग चावल से एक प्रकार की शराब तैयार करते हैं और उसीको पीते हैं। सिरका, ताड़ी और इसी प्रकार की अन्य चीजें भी वे लोग चावल ही से बनाते हैं। शराब तो वहाँ बाहर से भी नहीं आती। वे लोग शराब को जानते ही नहीं और न उसे पीते ही हैं।

चीनियों का रहन सहन

चीनी लोग स्वच्छता का विचार नहीं रखते। जब वे शौच जाते हैं तो पानी को काम में नहीं लाते, बल्कि कागज का प्रयोग करते हैं। वे लोग मुरदार तथा मुरदार के समान पदार्थों को खा जाते हैं। उनका हाल मजूसियों (ईरानी अग्नि पूजनेवाले लोगों) का सा है और उनका धर्म मजूसियों से वस्तुत बहुत

(१) चीन में मेवों और फलों की कमी वर्तमान समय में भी नहीं है। कई बढ़िया मेवे और फल बहुतायत के साथ होते हैं यहा तक कि उतने किसी अन्य देश में नहीं होते। मार्को पोलो का कथन है कि चीन में अमरूद तौल में चार-पाच सेर तक का होता है और उसका गूदा हलवे से भी अधिक मीठा होता है।

कुछ मिलता जुलता है। उनकी स्त्रियाँ सिर खोले रखती हैं, सिरों में कंघे खोंसे रहती हैं। ऐसा भी होता है कि एक स्त्री के सिर में केवल हाथी दांत के बीस बीस कंघे होते हैं। पुरुषों के सिरों पर एक विशेष प्रकार की टोपी होती है। चोरों के विषय में उनके यहाँ यह प्रथा है कि जिस समय वह पकड़ा जाय उसी समय मार डाला जाय।

(पहला खंड समाप्त)

दूसरा खंड।

भारत तथा चीन सबंधी बातें

और

इन देशों के राजाओं के हाल

—o—

संसार के चार प्रधान राजा

भारतवर्ष और चीन के निवासी इस बात मे सहमत हैं कि संसार के प्रधान राजा केवल चार ही हैं। इन चारों में से सर्वश्रेष्ठ बादशाह निर्विवाद रूप से उनकी दृष्टि में अरब का राजा है, क्योंकि अरब का राजा सब से अधिक शक्तिशाली, धनी, रोबदाबवाला और खूबसूरत है। निस्सदेह वह श्रेष्ठ धर्म्म (मुसलमानी धर्म्म) का भी बड़ा बादशाह है जिससे बढ़कर अन्य कोई वस्तु ही नहीं है। उसके बाद चीन का राजा अपने आपको संसार में दूसरा बादशाह ख्याल करता है। इसके बाद तीसरा पद यूनान के बादशाह का है। फिर (भारत के राजा) बल्हरा का (चौथा दर्जा) है जिसके कान छिदे हुए हैं।

भारतवर्ष का महाराजा बलहरा

बलहरा (بلهرا) भारतवर्ष में सब से बड़ा राजा है और सब भारतवर्षीय लोग उसके बड़प्पन को स्वीकार करते हैं। यद्यपि भारतवर्ष के राजाओं में से प्रत्येक राजा अपने राज्य का पृथक् पृथक् स्वामी है तथापि सब राजा बलहरा को अपना महाराजा समझते हैं। इस महाराजा के दूत जब राजाओं के यहाँ आते हैं तो राजा आदर के साथ उनका यथोचित मान करते हैं। यह महाराजा अरब-निवासियों के समान बड़ा दानी है। इसके अधिकार में बहुत से घोड़े[1] और हाथी[2] हैं। लक्ष्मी भी इसके पास बहुत है। इसके चाँदी के सिक्के का नाम तातरिया (طاطريه) है। यह सिक्का अरब देश के सिक्के से डेढ़ गुना भारी होता है। इस सिक्के में सन् की तारीख़ उस बादशाह के समय से होती है जो राज्य का आदि तथा सर्वमान्य राजा होता है। इनके यहाँ अरब-निवासियों की तरह तारीख़

---

(१) लड़ाई के निमित्त घोड़े आज भी बहुत उपयोगी माने जाते हैं। प्राचीन काल में भी वे कुछ कम उपयोगी न समझे जाते थे। आज कल के समान पहले भी इनकी संख्या सेना में बहुत ज़्यादा होती थी। देखो परिशिष्ट—१९, 'सेना में घोड़ों की अधिकता'।

(२) प्राचीन समय में भारत के जिस राजा के पास जितने ज़्यादा हाथी होते थे वह उतना ही अधिक प्रतापी तथा शक्तिशाली समझा जाता था। हाथी लड़ाई के लिये परम उपयोगी समझे जाते थे। देखो परिशिष्ट—१६, 'प्राचीन काल में हाथी'।

की गणना हजरत मुहम्मद साहब के समय से नहीं है बल्कि तारीख का संबंध राजाओं के साथ है। इनके बादशाहों की आयु प्राय बहुत हुआ करती है। बहुत से बादशाहों ने प्राय पचास पचास वर्ष तक राज्य किया। बलहरा के राज्य के लोग प्राय ख्याल करते हैं कि महाराजा अरब-वासियों के साथ प्रेमभाव रखता है, इस कारण हमारे राजाओं की आयु तथा राज्य-काल में वृद्धि होती है। भारत-वर्ष के सब राजाओं में से बलहरा ही अरबों के साथ सब से अधिक प्रेमभाव रखता है और इसीके समान इसके राज्यवाले भी अरबवालों के साथ व्यवहार करते हैं।

महाराजा बलहरा और अन्य राजा

जिस प्रकार (फारस देश के) प्रत्यक राजा को किसरा[1] (खिसरो) कहा जाता है इसी तरह यहाँ के प्रत्येक राजा को बलहरा[2] कहा जाता है। यह कोई विशेष नाम नहीं है। बलहरा के राज्य की भूमि का श्रीगणेश समुद्र के किनारे से

---

(१) किसरा (كسرى) शब्द निस्संदेह फारसी का खिसरो अर्थात् खुसरो (خسرو) शब्द है, पर अरबी साँचे पर चढ़कर यह ऐसा बन गया है।

(२) मान्यखेट (मालखेड) के राष्ट्रकूट (राठौड़) वंशी राजाओं के खिताब वल्लभ (श्रीवल्लभ, वल्लभराज आदि) का बिगड़ा हुआ रूप बलहरा है। (इसके लिये देखो खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर का छपा हुआ टॉड राजस्थान, पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा का टिप्पण, पृ० ३५६-६०),

होता है जो कि 'कुंकुम' (कोंकन) के नाम से विख्यात है। दूसरी ओर इसका राज्य चीन की भूमि से मिला हुआ है। इसके चारों ओर बहुत से राजा हैं जो इसके साथ युद्ध ठानते हैं, परंतु यह अपनी ओर से किसीपर धावा नहीं करता। इनमें एक राजा जुरुज़[१] कहलाता है। उसके पास बहुत बड़ा लश्कर है। उसके घोड़ों के समान भारतवर्ष में किसीके भी पास घोड़े नहीं हैं। वह अरबवालों का शत्रु है, परंतु इस बात को अवश्य स्वीकार करता है कि अरब का ही बादशाह सब से अधिक शक्तिशाली है। भारत में उससे बढ़कर मुसलमानी धर्म्म का शत्रु कोई और नहीं है। उसका राज्य ज़मीन की जिह्वा (समुद्र में निकली हुई भूमि, प्रायद्वीप) पर है। उस राज्य में द्रव्य बहुत है। ऊँट और पशु भी बहुत हैं। यहाँ के लोग चाँदी का व्यापार सोने के साथ करते हैं और यह भी कहा जाता है कि उस राज्य में चाँदी की खानें हैं। भारतव[र्ष] में कोई और राज्य चोरी से इतना अधिक सुरक्षित नहीं है जितना वह राज्य है[२]।

---

(१) जुरुज़ या जुज़र (جرز یا جزر) पाठ अरबी पुस्तकों में मिलता है। यह नाम प्राचीन गुजरात (गुर्जर, गुर्जरत्रा) देश का सूचक है। इस समय गुजरात से राजपूताने के दक्षिण के उक्त नाम के देश का ग्रहण किया जाता है परंतु पहले मारवाड़ के उत्तरी विभाग से लगाकर लाटदेश की उत्तरी सीमा तक का सारा देश गुर्जर कहलाता था। देखो परिशिष्ट-१७, 'जुरुज़ गुर्जरदेश (गुजरात)'।

(२) सुलैमान ने केवल इसी राज्य को चोरी से अधिक सुरक्षित

भारत के अन्य प्रतिष्ठित राज्य

जुरुज राज्य के पास ही ताफक़ नाम का राज्य है। यह राज्य छोटा सा ही है। यहाँ की स्त्रियाँ सारे भारत की स्त्रियों से सुदर हैं। इसके पास छोटा सा ही लश्कर है इस कारण यह अपने आस पास क राजाओ के पराधीन है। यह भी वलहरा के समान अरबवालों के साथ मित्र भाव रखता है। वलहरा, जुरुज और ताफक नामी राज्यों से बिल्कुल मिला जुला रोहमी का राज्य है। रोहमी का राज्य कोई बहुत बडा राज्य नहीं है परतु यह जुरुज के राजा के साथ युद्ध ठानता है और जिस प्रकार जुरुज के साथ युद्ध करता है उसी प्रकार वलहरा से भी लड़ता है। रोहमी के पास वलहरा, जुरुज और ताफक से अधिक लश्कर है। कहा जाता है कि जब वह युद्ध के निमित्त निकलता है तो लगभग पचास हजार हाथियों को लेकर निकलता है। और जब कभी युद्ध के लिये प्रस्थान करता है तब प्राय शरद्-ऋतु मे करता है क्योंकि हाथी प्यास के कष्ट को सहन नहीं कर सकते। इस कारण शरद्ऋतु में ही युद्ध के निमित्त निकलने में सुभीता पडता है। यह भी कहा जाता है कि उसके लश्कर के खेमों की सख्या दस हजार से लेकर पद्रह हजार तक होतीहै।

बतलाया है परतु सुलैमान से लगभग एक हजार वर्ष पहले (मैगस्थनीज के कथनानुसार) सारे भारत में चोरी का सर्वथा अभाव था।

भारतीय शिल्पकला तथा अन्य वस्तुएँ

इसके राज्य में एक ऐसा कपड़ा होता है जैसा किसी अन्य स्थान में होता ही नहीं। वह कपड़ा छोटी अंगूठी के घेरे में से गुज़ारा जा सकता है। वह रूई ही से बनाया जाता है परंतु बहुत सुंदर बनाया जाता है। मैंने अपनी आँखों से कुछ कपड़ों को देखा है[1]। इस देश में कौड़ियों का चलन है। इन्हें इस देश का मूल-धन जानना चाहिए। सोना, चाँदी और ऊद (عود)(सुगंधित लकड़ी) भी इस देश में होता है। पश्म के वस्त्र भी होते हैं उनसे जीन तथा घरेलू सामान बनाए जाते हैं।

रोहमी राज्य में गेंडा

इस राज्य में गेंडा नाम का एक प्रसिद्ध जानवर होता है। उसके माथे में सामने ही केवल एक सींग होता है। उसके सींग में मनुष्य की सूरत का तथा अन्य सांसारिक वस्तुओं का चिह्न होता है। एक ख़याल यह भी है कि सारा सींग काला होता है परंतु सूरत बीचों बीच में सफ़ेद रंग की होती है। गेंडा डील डौल मे हाथी से छोटा, काले रंग का, भैंस के समान होता है। वह इतना शक्तिशाली होता है कि कोई अन्य पशु उसके समान शक्तिमान् नही

(१) कपड़े की सुंदरता के वर्णन से यह नतीजा निकलता है कि रोहमी राज्य भारत के पूर्वी खंड में था।

होता । उसके खुर चिरुआ नहीं होते । पाँलो से लेकर कधे तक सारा एक ही भाग होता है अर्थात् बीच में कोई भी जोड नहीं होता । हाथी उसके भय से भाग जाता है । ऊँट तथा बैल की आवाज के समान उसकी गरज होती है। उसका माँस निपिद्ध नहीं है और निस्सदेह हमने उसका मास खाया भी है । इस राज्य के जगलों में गेंडे बहुत होते हैं । इसके सिवा भारत के अन्य भागों मे भी बहुत से हैं । उनका सींग बहुत ही बढिया होता है । बहुत मे सींगो में पुरुष, मोर, मछली तथा और कई सूरतें बनी होती हैं । चीन के लोग इससे पटके या कमरबद को सजाते हैं। ऐसे सुसज्जित कमरबद का मूल्य, चीन देश मे दो हजार तथा तीन हजार, बल्कि सौदर्य्य के लिहाज से और अधिक, अशरफियों तक पहुँच जाता है । ये सब चीजें रोहमी राज्य में कौडियों के साथ बेची और खरीदी जाती है जो इस देश का मूल-धन है।

भारत के कुछ छोटे छोटे राज्य

रोहमी राज्य के बाद काशवियन राज्य है । यह समुद्र से दूर है । यहाँ के निवासी गोरे रग के हैं और उनके कान छिदे हुए हैं । उनके यहाँ ऊँट होते हैं । सारा देश रेगिस्तानी और पहाडी है । काशवियन् के बाद समुद्र तट पर कैरज

(१) परिशिष्ट-अङ्क १८ में 'गेंडे' के बारे में देखो ।

नाम का एक छोटा सा राज्य है। यह देश दीन है परंतु इसमें समुद्र के जुआर-भाटा से बहुत सा अंबर आ जाता है। इस देश में हाथीदाँत और काली मिरचें भी होती हैं। परंतु काली मिरचें थोड़ी ही होती हैं अतः लोग काली मिरचों को हरी ही खा जाते हैं।

इन राज्यों के सिवा और बहुत से छोटे मोटे राज्य हैं, उनकी संख्या केवल शुद्ध पवित्र और सर्वश्रेष्ठ ईश्वर ही जानता है, उन्हींमें से एक राज्य मवजह के नाम से विख्यात है। वहाँ के निवासी गोरे रंग के होते हैं और उनका पहिनाव चीनियो के समान होता है। वहाँ कस्तूरी भी बहुतायत से होती है। वहाँ के पहाड़ सफ़ेद रंग के हैं और उनसे लंबे कहीं और नहीं हैं। वहाँ के लोग आस पास के राजाओं के साथ युद्ध करते रहते हैं, और कस्तूरी जो वहाँ होती है बहुत ही बढ़िया होती है। मवजह से परे मावद नाम के राजा हैं। यहाँ मवजह की अपेक्षा नगर बहुत हैं और यहाँ के निवासी सौंदर्य्य के विचार से भी मवजहवालो से बढ़ चढ़कर हैं, परंतु चीनियों से बहुत मिलते जुलते भी हैं। इनपर राज्य करनेवाले हाकिम चीनियों के हाकिमों के समान विशेष या नपुंसक[1] नौकर हैं। यहाँ का राज्य चीन से बहुत कुछ मिला

---

(१) यहां पर अरबी में जो शब्द है उसका अर्थ 'विशेष' या 'बधिया' दोनों हो सकता है। इस विषय में कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार मुसलमानों के अभ्युदय काल में राजमहल में पुंसत्व

जुला है। यहा के लोग चीन के राजा से सधि रखते हैं पर चीन के राजा की आज्ञाओं की ओर अधिक ध्यान नहीं देते।

चीन को भारत का भय

मावद राज्य से हर साल दूत चीन के सम्राट् के पास भेंट लेकर जाते हैं और चीन के सम्राट् की ओर से दूत मावद के यहाँ भेंट लाते हैं। चीन का देश बडा लबा चौडा है अत जब मावद के दूत चीन देश मे प्रवेश करते हैं तो उनसे बहुत सावधान रहा जाता है, इस भय से कि कहीं ऐसा न हो कि वे लोग चीन मे अधिकार जमा लेें क्योंकि उन लोगों की सख्या बहुत ज्यादा है परतु भली भाँति जान लेना चाहिए कि मावद और चीन देश के बीच में बहुत से पहाड ही पहाड और कठिन से कठिन पहाडी घाटियाँ हैं। अत इसपर भी चीन भयभीत रहता है।

चीन के प्रधान नगरो की विशेषताएँ

लोगों का कथन है कि चीन देश में बडे बडे प्रधान नगरों की सख्या दो सौ से भी अधिक है। प्रत्येक प्रधान नगर में एक हाकिम तथा एक खास अधिकारी होता है। उस प्रधान नगर की अधीनता में बहुत से छोटे छोटे नगर होते हैं। खानफू

रहित दास रखे जाते थे सभव है उसी प्रकार की प्रथा चीन में भी रही हो और ये लोग सम्राट् के कृपापात्र बनकर बाद को विशेष पद के भागी बनते रहे हों।

एक प्रधान नगर है। वहाँ जहाज़ लंगर डालते हैं। उसके अधीन बीस छोटे छोटे नगर हैं[1]। चीन देश में वास्तविक रूप से प्रधान नगर वह कहा जाता है जहाँ कहीं तुरहियाँ रक्खी जाती हैं। तुरही एक लंबा सा बाजा होता है जिसमें फूँक मारी जाती है। यह इतना मोटा होता है कि पूरे दोनों हाथों से पकड़ा जाता है। बाहर की ओर चीनी मिट्टी से रँगा होता है। इसकी लंबाई तीन या चार हाथ की होती है। मुँह का सिरा इतना पतला होता है कि मनुष्य के मुँह में आ जाता है। इसकी आवाज़ लगभग एक मील तक पहुँचती है।

प्रत्येक प्रधान नगर में चार फाटक होते हैं। प्रत्येक फाटक के ऊपर पाँच तुरहियाँ होती हैं। ये रात और दिन के नियत समयों में बजाई जाती हैं। इनके सिवा प्रत्येक प्रधान नगर में दस ढोल भी होते हैं जो कि तुरहियों के साथ बजाए जाते हैं। इन सब के बजाए जाने का कारण यह है कि इससे राजा की ओर प्रजा की भक्ति समझी जाय और साथ ही साथ लोगों को रात तथा दिन में समय का ठीक ठीक पता लगा करे[2]। समयों के जानने में चीनी लोग चिह्नों तथा बोझों

(१) प्रधान नगर की अधीनता में छोटे मोटे जो नगर होते थे उनके निमित्त प्रधान नगर को उनकी राजधानी समझना चाहिए और प्रधान नगर तथा अधीन नगरों से संयुक्त हुए सारे भाग को एक प्रांत के तुल्य जानना चाहिए।

(२) देखो नागरीप्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण भाग १ पृ० २२६

(वजनों) मे काम लेते हैं अथवा उनकी घडियाँ ऐसी होती हैं जिनमे चिह्न होते हैं और वे बोझ से चलती हैं[1]।

चीनियो के सिक्के

चीनियो मे पैसों से लेन्देन होता है। चीनियों के खजाने बादशाहो के खजानों के समान हैं। इनके सिवा किसी अन्य बादशाह के यहा पैसों का चलन नहीं है। यह देश का मूल-धन है। यद्यपि यहाँ सोने, चाँदी, मोती, दीवाज,[2] और रेशम की कुछ कमी नहीं है तथापि पैसों को ही पूँजी और मूल-धन जानते हैं और यहाँ पैसो का ही चलन है।

चीन मे अन्य वस्तुएँ

चीन देश में हाथी-दाँत, लोबान[3], ताँबे के टले और कछुए

---

(१) इस अवसर पर यह नतीजा निकलता है कि जिन बातो के आधार पर घडी का आविष्कार हुआ है उसके प्रारंभिक नियमों से चीन निवासी केवल परिचित ही नहीं थे बल्कि उन नियमों से काम भी लेते थे। सुलैमान से लगभग पाँच सौ वर्ष बाद अर्थात् तेरहवीं शताब्दी में पेकिन का हाल लिखते हुए मार्को पोलो कहता है कि नगर के बीच में एक घंटाघर है। उसमें पानी का घडियाल रहता है। जब घंटा हो चुकता है तब एक मनुष्य घंटा बजा देता है और एक तख्ते पर घंटे की संख्या लिखकर बाहर लटका देता है।

(२) दीवाज (ديباج) एक बढिया रेशमी वस्त्र होता है। इसको ही दीबाह या दीबा (ديباه يا ديبا) भी कहा जाता है।

(३) सुगंध फैलाने तथा दुर्गंध दूर करने के निमित्त लोबान

की पीठ की हड्डियाँ अर्थात् कछुए की पीठें[1] बाहर से आती हैं। गैंडे का सींग भी जिसका मैंने ऊपर वर्णन किया है और जिससे वे पटके या कमरबंद सजाते हैं बाहर ही से आता है। पशु यहाँ बहुत होते हैं। अरबी घोड़े तो नहीं होते परंतु अन्य जाति के घोड़े हैं। गदहे और ऊँट भी बहुत हैं। परंतु यहाँ के ऊँट के दो कोहान होते हैं। इनके सिवा यहाँ एक विशेष प्रकार की बढ़िया मिट्टी होती है जिससे शीशे के से पतले प्याले बनाए जाते हैं यहाँ तक कि उन प्यालों में पानी बाहर से साफ़ झलकता दिखाई पड़ता है यद्यपि वे मिट्टी के होते हैं[2]।

चीन में बाहरी माल की बिक्री का दस्तूर

जब सौदागर लोग समुद्री मार्ग से चीन में प्रवेश करते

एक बड़ी उपयोगी वस्तु है। आग पर रखते ही कपूर के समान उड़ती है और सुगंध फैला देती है। यह एक वृक्ष की गोंद है। जावा द्वीप और अरब के यमन, व हज़रमूत व उम्मान प्रांतों में यह बहुत होती है। परंतु यमन व हज़रमूत की सूखी लोबान में सुगंधि नहीं होती। यमन में जो लोबान होती है उसको 'कंदर दरियाई' कहते हैं अथवा केवल 'कंदर' भी कहते हैं।

(१) जानना चाहिए कि जिस प्रकार संस्कृत में 'राहोः शिरः' बोलना ठीक है, इसी प्रकार का वाक्य अरबी का भी है जिसका अर्थ 'कछुए' की पीठ की हड्डियाँ निकलता है।

(२) चीनी मिट्टी के विषय में अधिक जानने के लिये देखो परिशिष्ट— १६, 'चीनी मिट्टी'।

है तब चीनी लोग उनके माल को लेकर घरों में रख देते हैं। फिर वे लोग माल को कुछ महीनों तक रोके रहते हैं यहा तक कि सब से पिछला समुद्री सौदागर भी वहाँ पहुँच जाय। इस समय वे दस मे से तीन भाग (अर्थात् तीस सैकडे की दर से) माल ले लेते हैं और बाकी सौदागरो को दे देते हैं। यदि सम्राट् को उसमे से लेने की कुछ आवश्यकता होती है तो वह उस वस्तु के लिये अधिक से अधिक मूल्य नकद देता है और इस मामले में अन्याय बिलकुल ही नहीं किया जाता। बादशाह कपूर लेते हैं और एक मन कपूर का दाम पचास फकूजा देते हैं। यहाँ का एक फकूजा एक हजार पैसों के बराबर होता है। यदि बादशाह कपूर नहीं लेता तो अन्य लोग कपूर को आधे मूल्य पर ही लेते हैं।

चीनियो के मृतक

चीन मे जब कोई मर जाता है तो उसको उस समय तक नहीं गाडते जब तक कि अगले वर्ष मे वह दिन नहीं आ जाता जिस दिन कि वह मरा था। ये लोग मृतक को एक टिकटी में रखकर घर के एक कोने मे रख छोडते हैं। मृतक पर चूना छोड देते हैं, तो उसका पानी सूख जाता है और वह ठीक तौर से रहता है। बादशाहो को मुसब्बर (एलुआ[1]) और

(१) मुसब्बर (مصبر) या एलुआ - काले रंग की एक कडुवी वस्तु होती है। यह कई रोगों के निमित्त बहुत उपयोगी होती है।

कपूर में रखते हैं। यहाँ के लोग मृतक के निमित्त पूरे तीन साल तक रोते हैं। जो कोई नहीं रोता उसकी ख़बर डंडे से ली जाती है। स्त्री और पुरुष किसीकी भी इस मामले में रियायत नहीं की जाती। जो कोई नहीं रोता लोग उसे (उपालंभ देकर) कहते हैं कि मृतक की मृत्यु ने उसे (न रोनेवाले को) निस्संदेह दुःख नहीं पहुँचाया है अर्थात् न रोने वाले को अपने ही मृतक की मृत्यु से दुःख नहीं पहुँचा है।

चीनी मृतकों को गाड़ते हैं

जिस प्रकार अरब निवासी मृतकों को क़बर के कोने के भाग में गाड़ते हैं उसी तरह ये लोग भी करते हैं[1]। ये लोग ख़याल करते हैं कि मृतक सचमुच खाया पीया भी करता है। इस कारण मृतक के लिये भोजन बंद नहीं किया करते। अतः रात्रि में मृतक के समीप भोजन अवश्यमेव रख दिया करते हैं। जब भोर होता है और भोजन बाक़ी नहीं पाते तब लोग कहते हैं कि वास्तव में मृतक ने भोजन पाया है। जब तक मृतक इनके घरों में रहता है रोना और भोजन निरंतर, जारी रहता है। इस प्रकार मृतकों के कारण लोग बड़े कंगाल हो जाते हैं, यहाँ तक कि उनके पास एक पैसा भी नहीं बाक़ी रह जाता, और लोग अपना सर्वस्व मृतक के हेतु ख़र्च कर बैठते हैं। अब से पहले इनमें यह दस्तूर था कि

---

(१) चीन के साधारण मृतक तथा प्राचीन मृतक बादशाहों के विषय में देखो परिशिष्ट—२०, 'चीन के मृतक'।

राजा अथवा राजकुटुम्बी को ये लोग वडे अमूल्य वस्त्र धारण कराकर गाडते थे और साथ में ही जडाऊ पटके रख देते थे। उनका मूल्य बहुत ज्यादा होता था। परतु अब ऐसा नहीं किया जाता क्योंकि कुछ मृतकों की कबरों को खोदकर उनके साथ की चीजें निकाल ली गई हैं।

चीनियो में लिखना पढना और अधिकारी वर्ग

चीन के अमीर गरीब तथा छोटे, वडे सभी लिखना पढना जानते हैं[1]। बादशाह तथा हाकिम का नाम उसके वडप्पन तथा उसके अधीन नगरों की वडाई के अनुसार हुआ करता है। प्रत्येक छोटे नगर के अधिकारी को तौसज कहते हैं। तौसज का अर्थ है कि जो नगर का प्रवध रखे। जो नगर खानफू के समान हो उसके प्रवधकर्ता को दीफू कहते हैं। विशेष अधिकारी को तौकाम कहा जाता है। विशेष अधिकारी का चुनाव सर्व साधारण ही में से होता है। प्रधान न्यायाधीश लकशी मामकूनन कहा जाता है। इनके अतिरिक्त अन्य अधिकारियों के भी नाम हैं जिनको हम ठीक ठीक बतला नहीं सकते।

---

(१) प्राचीन काल म चीन में विद्या की अच्छी चर्चा थी। कई बहुत पुराने हस्तलिखित ग्रथ चीन में मिले ह। चीनी लोग शिल्प कला में भी अनोखे तथा अद्वितीय थे। चीनी मिट्टी के पात्रों के बनाने तथा रेशम के कार्य्य मे उनके साथ कोई मुकाबिला कर ही नहीं सकता था, दस्ती तस्वीरों के खींचने में भी उनके साथ कोई बराबरी नहीं कर सकता था।

चीनी हाकिम का दरबार

जब तक कि कोई मनुष्य ४० की आयु नहीं प्राप्त कर लेता तब तक वह अधिकारी नहीं बनाया जाता। इस आयु के पाने पर समझा जाता है कि इसने अनुभव प्राप्त कर लिया है। छोटे छोटे हाकिमों में से जब कोई दरबार में बैठता है तब वह अपने नगर में कुरसी पर बैठता है और एक विशाल भवन में बैठता है। उसके सामने एक और कुरसी होती है। फिर उसके सामने लोगों के आवेदनपत्र रखे जाते हैं जिनमें लोगों के लिये आज्ञाएँ होती हैं। हाकिम के पास ही सामने या पीछे की ओर एक मनुष्य खड़ा होता है। उसको लीखु कहते हैं। यदि हाकिम आज्ञा देने में कहीं ठोकर खाता है अथवा कुछ गलती कर बैठता है तो वह उसे ठीक कर देता है। हाकिम अपनी ओर से किसी काग़ज़ पर जो कुछ लिख कर देता है वही ठीक माना जाता है। उसकी जबानी बातों को लोग पर्याप्त नहीं मानते हैं।

जब कोई मनुष्य हाकिम के सामने कुछ निवेदन लिखकर करना चाहता है तो उस निवेदनपत्र को हाकिम के पास पहुँचने से पहले दरवाजे पर खड़ा होनेवाला मनुष्य देख लेता है। यदि प्रार्थनापत्र में कोई दोष होता है तो वह उसे लौटा देता है। जो पत्र हाकिम के लिये लिखे जाते हैं उनको केवल वही लेखक लिखा करता है जो इस कार्य्य में निपुण

होता है। वह लेखक पत्र में लिख देता है कि इस पत्र को अमुक के पुत्र अमुक ने लिखा। यदि उसमें कोई त्रुटि पाई जाती है तो उसको बुरा भला कहा जाता है और डंडे से उसकी खबर ली जाती है। हाकिम जब दरबार करता है तो अवश्यमेव खा पीकर बैठता है, जिससे ऐसा न हो कि (भूख के मारे) कोई गलती कर बैठे। जिस नगर का जो हाकिम होता है उसी नगर के कोष से उसको खर्च मिलता है।

चीन सम्राट् के विचार

चीन का सब से बड़ा हाकिम अर्थात् सम्राट् प्रत्येक मास में केवल एक ही दिन सर्वसाधारण के सामने बाहर निकलता है। सम्राट् का कथन है कि यदि लोग मुझे देख लेंगे तो मुझे तुच्छ समझेंगे और राज्य बिना रोब-दाब तथा शक्ति के क़ायम नहीं रहा करते। सर्वसाधारण मे यह बुद्धि नहीं होती कि वे न्याय को यथोचित समझ सकें, इस कारण आवश्यकता है कि शक्ति का प्रयोग किया जाय जिससे लोगों की दृष्टि मे हम बड़े बने रहें अर्थात् हमारा प्रताप रहे[1]।

---

(१) जापान के महाराजा भी पहले सर्वसाधारण के संमुख नहीं निकला करते थे, बहुधा परदे ही में रहा करते थे, परन्तु भूतपूर्व महाराज ने इस रीति को उठा दिया।

फिर ऐसा करने से घंटी हाकिम के सिर पर बजती है। इसके बाद उस पीड़ित को भीतर आने की आज्ञा दी जाती है, वह स्वयमेव अपना हाल बयान करता है और अपने ऊपर हुए अत्याचार को प्रकट करता है। चीन के सब नगरों में यही हाल है[1]।

चीन राज्य में यात्रा में सरकारी परवाने तथा संपत्ति

जो मनुष्य यात्रार्थ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना चाहता है उसको दो परवाने राहदारी के लेने पड़ते हैं। उनमें से वह एक तो हाकिम से लेता है और दूसरा विशेष अधिकारी से। हाकिम का परवाना मार्ग के निमित्त होता है। उसमें यात्री का नाम, उसके साथी का नाम, उसकी तथा उसके साथी की आयु तथा कुटुंबों का परिचय होता है। प्रत्येक मनुष्य को चाहे वह चीन ही का हो, चाहे अरब देश का, चाहे किसी स्थान का हो, यह आवश्यक है कि वह अपने विषय में उन सब बातों को बतलावे जिनको वह जानता है।

विशेष अधिकारी के परवाने में यह लिखा होता है कि यात्री के पास कितना धन है और कितना माल है। इनकी आवश्यकता इस कारण से पड़ती है कि सीमांत स्थानों में ये परवाने देखे जाते हैं। अस्तु, सीमांत स्थानों में जब कोई पहुँचता है

(१) इस प्रकार के 'न्यायघंटा' का उल्लेख भारतवर्ष के कई राजाओं के वर्णनों में मिलता है।

तो वहां लिखा जाता है कि अमुक का पुत्र अमुक हमारे यहाँ अमुक दिन आया। ऐसा होने से कोई मनुष्य दूसरे की सपत्ति नहीं ले सकता और न किसी की सपत्ति गुम ही हो सकती है। यदि किसी का कुछ माल चला जाता है अथवा कोई यात्री मर जाता है तो पता लग जाता है कि क्योंकर माल गया। फिर खोया हुआ माल मिल जाता है तो उसको अथवा यात्री के मरने पर उसके वारिसो को वापस दिया जाता है।

चीन मे न्यायपद्धति

चीनी लोग अपने काम काज तथा कचहरी मे न्याय से काम लेते हैं। जब किसी मनुष्य का किसी के साथ कर्ज-सबधी कुछ मामला होता है तो मुद्दई और मुद्दाअलह दोनों एक एक कागज पृथक् पृथक् लिखते हैं और प्रत्यक अपना दावा तथा जबान-दावा उसमे बयान करता है। मुद्दाअलह अपने जबान-दावे मे हस्तान्तर के सिवा अपने अगूठे के पासवाली अँगुली तथा बीच की अँगुली से भी निशान कर देता है। फिर दोनों कागज हाकिम के समुख एक साथ पेश किए जाते हैं। हाकिम इन दोनो का जाँच परताल करके हुकुम लिखता है। फिर मुद्दई और मुद्दाअलह दोनो के कागज पृथक् पृथक् करके वापस दे देता है।

मुद्दाअलह को कागज पहले दिया जाता है कि वह दावे

को स्वीकार करें। परंतु मुद्दाअलह यदि समझता है कि उस पर मुद्दई का कुछ नहीं है तो मुद्दई के दावे से इनकार करता है। उस समय उससे कहा जाता है कि अपना कागज़ इस संबंध में पेश करो[1]। जब मुद्दई और मुद्दाअलह दोनों को अपने अपने कागज़ दे दिए जाते हैं तब इनकारी होने की अवस्था में मुद्दाअलह से कहा जाता है कि अपनी सफ़ाई पेश करो नहीं तो यदि मामला ऐसा ही है जैसा कि मुद्दई का बयान है तो तुम्हारी पीठ पर बीस डंडे बरसाए जावेंगे और तुम्हें बीस हज़ार फ़क्कूज देने पड़ेंगे। ये बीस हज़ार फ़क्कूज فكوج दो हज़ार अशरफ़ियों के बराबर ठहरते हैं और बीस डंडों से मृत्यु ही हो जाती है। अतः चीन में कोई भी ऐसा नहीं जो अपनी जान तथा संपत्ति के नाश का भय न. करके अपने आप को इस प्रकार के खतरे मे डाले अथवा ऐसी सज़ा को सह सके। निदान चीनी न्याय बहुत ठीक ठीक करते हैं और किसी का हक़ बिलकुल नहीं मारा जाता। इनमें न तो किसी गवाह ही की आवश्यकता समझी जाती और न किसी को शपथ ही खिलाई जाती है।

जब कोई मनुष्य दिवालिया हो जाता है और महाजनों का धन नाश कर बैठता है तब महाजन लोग उसको जेलखाने में भिजवा देते हैं। वहाँ उसका बयान लिया जाता है। एक मास के बाद बादशाह उसको हवालात से बाहर निकाल देता है

---

(१) अरबी में इस प्रकरण का भाव यथेष्ट रूप से स्पष्ट नहीं है।

और इस बात की डुगडुगियाँ पिटवा देता है कि अमुक मनुष्य का पुत्र अमुक नाम का अमुक नाम के मनुष्य की सपत्ति को नष्ट कर बैठा है। किसी के पास उसकी धरोहर हो या किसी प्रकार की सपत्ति हो, अथवा कोई भी ऐसी वस्तु हो जिससे कि कर्ज अदा किया जा सके तो उसको चाहिए कि वह एक मास के भीतर जाहिर कर दे। दिवालिये के ऊपर डडे भी बरसाए जाते हैं। उसको जेल में खाना पीना दिया जाता है। यदि दिवालिये की सपत्ति का पता चल जाता है तो चाहे वह उस धन का इकरार करे चाहे न करे दोनों दशाओं में वह अवश्यमेव पीटा जाता है। ऐसी अवस्था में यह समझा जाता है कि दिवालिये का यह कार्य लोगों के हक हडप करने ही की नीयत से था। उसके लिये यह उचित न था कि वह अपने लिय जाति के साथ इस प्रकार का धोखा करे। यदि दिवालिये का कार्य धोखेबाजी पर निर्भर नहीं होता और वह हाकिम की दृष्टि मे सचा साबित हो जाता है कि उसके पास कर्ज दारो को देने के निमित्त कुछ भी नहीं है तो करजदारो को (उनका लेना) बगबून के राज-कोष से दिया जाता है। बगबून यहा सम्राट् को कहते हैं। कारण यह कि 'बगबून' का अर्थ स्वर्ग का पुत्र है। पर हमलोग यहाँ के सम्राट् को बगबून कहते हैं[1]।

(१)—बगबून (بغبور) समव है कि फगफूर हो जो चीन के बादशाहों की उपाधि है। कुशानवशी हिंदुस्तान के राजाओ की, जो चीनी या शक थे, उपाधि 'देवपुत्र' मिलती है। यही उपाधि पुराने खुतन या पूर्वी तुर्किस्तान से डाक्टर स्टाइन को मिले हुए राजकीय लेखों मे पाई जाती है।

बाद को जनता में घोषणा करा दी जाती है कि जो मनुष्य इसके साथ लेन-देन करेगा वह मृत्यु के घाट उतारा जायगा। इस प्रकार ऐसी संभावना नहीं हुआ करती कि किसी का धन जाता रहे। यदि यह पता लगता है कि सचमुच अमुक मनुष्य के पास दिवालिये का माल है किंतु उसने इकरार नहीं किया तो ऐसी अवस्था में वह डंडों से ही इतना पीटा जाता है कि मृत्यु की शरण ले लेता है। दिवालिये को इस समय किसी प्रकार का शारीरिक दंड नहीं दिया जाता। केवल लेन-देन करने से सर्वदा के लिये रोक दिया जाता है और मिला हुआ माल महाजनों में बँट जाता है।

चीन की चिकित्सा संबंधी बातें

चीन में दस हाथ लंबा एक पत्थर गड़ा रहता है। उसमें चाँदी के अक्षरों में औषधियों का वर्णन हुआ करता है कि अमुक रोग के निमित्त अमुक औषध उत्तम है। यदि कोई मनुष्य इतना ग़रीब हो कि औषध का दाम न दे सकता हो तो राज्यकोष से उसकी दवा का मूल्य अदा कर दिया जाता है।

चीन में राज्यकोष से बूढ़ों की वृत्ति

चीन मे भूमि का कर नहीं लिया जाता वल्कि प्रत्येक मनुष्य से उसकी संपत्ति तथा धन के अनुसार एक प्रकार का कर अवश्य वसूल किया जाता है। जब किसी के यहाँ कोई

पुत्र उत्पन्न होता है तो सम्राट् के यहाँ उसका नाम लिखा जाता है, फिर अठारह वर्ष की अवस्था हो जाने पर उससे कर लिया जाने लगता है। अस्सी वर्ष की आयु होने पर उससे कर लेना बद कर दिया जाता है और राज्य-कोष से उसकी वृत्ति बँध जाती है, क्योंकि चीन के बादशाहों का कथन है कि जब जवानी की अवस्था मे हमने उससे धन लिया है तब अब बुढापे में उसे क्यों न दिया जावे।

चीनियो का लिखना पढ़ना तथा कुछ अन्य बाते

गरीबो तथा उनके बाल-बच्चों को पढाने लिखाने के लिये प्रत्येक नगर में पाठशाला और अध्यापक नियत हैं। उनको राज्य-कोष से वेतन दिया जाता है। यहाँ की स्त्रियाँ प्राय सर खोले रहती हैं, केवल पुरुषो की उपस्थिति में सर ढाँक लेती हैं।

चीन में टायू नामी एक बस्ती है। वास्तव मे यह एक विशाल भवन है और यह एक पहाड पर है। चीन की प्रत्येक ऐसी बस्ती को टायू ही कहते हैं। चीनी लोग सुदर और अच्छे डील डौल के होते हैं। रग उनका गोरा होता है। वे शराब बिल-कुल नहीं पीते। उनके बाल ससार की सारी जातियो के बालों से अधिक काले होते हैं। स्त्रिया बालो को मोड रक्खा करती हैं।

भारत में गरम दहकते लोहे से दोषी की परख[1]

भारतवर्ष में जब कोई मनुष्य किसी दूसरे पर ऐसा दोष आरोपण करता है जिसमें कि वह मृत्यु का अधिकारी हो तब ऐसे समय में उस दोषी को अग्नि उठाने के लिये कहा जाता है। वह यदि इस बात को स्वीकार कर लेता है तो फिर लोहे का एक टुकड़ा खूब ही गर्म किया जाता है यहाँ तक कि उससे अग्नि प्रकट होने लगती है। इसके पश्चात् उसके खुले हाथ पर किसी वृक्ष की सात पत्तियाँ रक्खी जाती हैं। इन पत्तियों के ऊपर दहकता हुआ लोहे का गर्म टुकड़ा रख दिया जाता है। वह इस टुकड़े को लेकर कुछ देर तक टहलता है, बाद को फेंक देता है, फिर चमड़े के एक थैले में उसका हाथ डाल दिया जाता है और उस पर सम्राट् की मुहर लगा दी जाती है। तीन दिन बीत जाने के पश्चात् जब वह इस बात का परिचय देता है कि उसे कुछ कष्ट नहीं पहुँचा तब उसका हाथ खोल दिया जाता है। यदि उसके हाथ को कुछ कष्ट नहीं पहुँचा हो तो वह छोड़ दिया जाता है और मृत्यु के घाट नहीं उतारा जाता, बल्कि जुरमाने के तौर पर एक मन सोना दोष आरोपण करनेवाले को बादशाह के कोष मे दाखिल करना पड़ता है।

---

(१)—दिव्य, देखो याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, प्रकरण ७ श्लोक १०२–९।

भारत में खौलते पानी से दोषी की परीक्षा

भारतवर्ष में कभी कभी ऐसा भी होता है कि लोहे या तांबे के बरतन में पानी खूब खौलाया जाता है, यहाँ तक कि कोई उसको छू भी नहीं सकता। उस पानी मे फिर एक लोहे का छल्ला डाला जाता है। फिर दोषी से कहा जाता है कि वह हाथ डालकर उस छल्ले को पानी से निकाले। मैंने स्वयमेव अपनी आँखो से देखा कि एक मनुष्य ने हाथ डालकर छल्ले को निकाला किंतु उसको कुछ हानि न पहुँची। ऐसी दशा मे भी दोष आरोपण करनेवाले को एक मन सोना देना पडता है।

लंका में शाही जनाजे की प्रथा

लंका मे जब राजा मरता है तब उसको एक गाडी मे चित लिटाया जाता है। वह गाडी भूमि से बहुत ज्यादा ऊँची नहीं हुआ करती। राजा का सिर पीछे की ओर होता है और सिर के बाल जमीन में छू जाते हैं। इस गाडी के पीछे एक स्त्री होती है। वह राजा के सिर पर मिट्टी डालती और जोर से कहती जाती है—

"लोगो, देखो यह तुम्हारा राजा है। कल यह राजा था। इसका आदेश माना जाता था। आज संसार को त्याग बैठा है। अब इसकी जो दशा है, उसको तुम लोग देख रहे हो। मृत्यु ने उसकी आत्मा को

निकाल लिया है, सो तुम लोगों को चाहिए कि जीवन का कुछ भरोसा मत करो।"

इस प्रकार का हाल तीन दिनों तक रहता है। बाद को चंदन कपूर और केसर एकत्र किए जाते हैं और वह जलाया जाता है। उसकी राख हवा में उड़ा दी जाती है। भारत के तो सभी लोग अपने मृतकों को जलाते हैं। लंका का टापू सब से अंतिम टापू है और यह भारत देश मे है। अनेक बार ऐसा भी हुआ है कि जब राजा को जलाया गया तो रानियाँ भी साथ ही साथ जल मरीं, परंतु ऐसा काम रानियों की अपनी इच्छा पर निर्भर होता है[1]।

भारत के तपस्वी साधु

भारतवर्ष में ऐसे भी लोग पाए जाते हैं जो कि जंगलों तथा

---

(१) राजतरंगिणी में लिखा है कि एक रानी तो रथ मे बैठी सती होने जा रही थी इतने में दूसरी उससे पहले पहुँचकर चिता पर चढ़ गई। (८।३६७)।

लार्ड विलियम बेंटिंग ने सती-प्रथा को दिसंबर सन् १८२६ ई० में कानूनन यथेष्ट रूप से बंद किया। इससे पहले भारत में सती-प्रथा बहुत जोरों के साथ बहुत काल तक रह चुकी है। किसी किसी समय में इस प्रथा को बंद करने के निमित्त बहुत कुछ उद्योग हुआ था किंतु वह सर्वथा बंद न हुई। अनेक स्थानों में प्राचीन सतियों के बहुत से स्मारक अब तक पाए जाते हैं। यद्यपि सती होना अब कानूनन मना है और सती-प्रथा निस्संदेह अब बंद ही है तथापि किसी न किसी समय भारत के किसी न किसी भाग में सती-घटना का समाचार समाचार-पत्रों में अवलोकनार्थ आ ही जाता है।

पहाडा में रहा करते हैं। ऐसे लोगो का मल जाल सर्वसाधारण के साथ बहुत ही कम अथवा बिलकुल ही नहीं हुआ करता। ये लोग जगली बनस्पति तथा फलो पर ही जीवन व्यतीत करते हैं। स्त्रियो से बचे रहने के विचार से अपनी इद्रिय पर एक लोहे के छल्ले का इस्तेमाल रखते हैं। इनमे से कुछ लोग तो सदैव नग्न ही रहा करते हैं, कुछ सूर्य के समुख खडे रहते हैं और केवल चीते की खाल तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तु उनके ऊपर होती है। एक बार मैंने देखा कि एक स्थान पर एक मनुष्य सूर्य की ओर मुख किए हुए खडा था, उसके ऊपर एक चर्म था। सोलह वर्ष के पश्चात् जब मैं फिर लौटकर उसी स्थान पर आया तो देखता हूँ कि वह तपस्वी फिर उसी प्रकार खडा था जैसा कि मैंने उसे पहले देखा था। ऐसी दशा देखकर मुझे बडा आश्चर्य हुआ कि सूर्य की गरमी से उसकी आँख न जाने क्यों नहीं फूटीं।

भारत मे अधिकार

भारतवर्ष मे राजकीय अधिकार राजघराने मे ही रहा करता है और किसी हालत में भी दूर नहीं होता, बल्कि एक के पश्चात् दूसरे को मिला करता है। विद्या, चिकित्सा तथा अन्य कला कौशल वालो मे भी कुटुब ही में अधिकार समझा जाता है। किसी अन्य व्यवसाय का मनुष्य अपने से भिन्न व्यवसाय में समिलित नहीं हो सकता[1]। राजा लोग एक ही

---

(1) जन्म से जाति।

पुरुष ही मृत्यु का भागी होता है, नहीं तो स्त्री की रज़ामंदी होने पर दोनों के दोनों मार दिए जाते हैं।

चीन तथा भारत में चाहे कोई मनुष्य तनिक सी चीज़ चुराए चाहे बहुत सी, प्रत्येक दशा में वह मार डाला जाता है। भारत में यदि कोई एक पैसा अथवा इससे अधिक मूल्य की वस्तु चुराता है तो उसकी सज़ा यह होती है कि एक लंबी लकड़ी का सिरा खूब तेज़ किया जाता है, फिर चोर चूतड़ के बल उसपर बैठाया जाता है यहाँ तक कि वह लकड़ी चोर के गले तक पहुँच जाती है।

आचार, गृह तथा गृहिणी विषयक बातें

चीनी लोग बालकों के साथ दुराचार करते हैं। मूर्तियों के संमान के हेतु जो अनेक कार्य करते हैं उन्हींमें इसकी भी गणना करते हैं। मकानों की दीवारें चीन में लकड़ी की होती हैं परंतु भारतवर्ष में मकान मिट्टी, चूने, ईंट और पत्थर के बनाये जाते हैं। चीन के अनेक मकान भारतीय गृहों के समान भी हैं। चीन तथा भारत में से किसी जगह के भी लोग एक ही स्त्री नहीं रखते बल्कि दोनों देशों मे लोग जितनी स्त्रियाँ चाहते हैं ब्याह लेते हैं।

चीनियों के भोजन तथा पूजा-पाठ

भारतवर्ष के लोग प्रायः चावल खाते हैं[1] परंतु चीनियों

(१) सुलेमान ने जो कुछ लिखा है वह भारत के दक्षिण तथा पूर्वीय भागों की बाबत ही लिखा है। दक्षिण की ओर चावल ही ज्यादा खाते हैं। इसी प्रकार कुछ अन्य बातों को भी समझना चाहिए।

का भोजन गेहूँ और चावल दोनो है। भारतवासी गेहूँ नहीं खाते। चीन तथा भारत मे से किसी भी देश में खतने[1] का दस्तूर नहीं है। चीन के लोग मूर्तियों के पुजक हैं, उन्हींके उपासक हैं और उन्हींके सामने मत्था टेकते हैं। इनके पास धर्म-ग्रथ भी है।

दाढी-मूछो का वृत्तांत

भारत के लोग अपनी दाढी लबी बढाते हैं। बाज लोगो की दाढी तो मैंने तीन हाथ तक की देखी है। मूछें रखने का दस्तूर बिलकुल नहीं है। चीनियों के दाढी स्वाभाविक रूप से निकला ही नहीं करती। भारत मे यह भी दस्तूर है कि जब किसी के यहाँ कोई मर जावे तो सर और दाढी मुँडा डालते हैं।

न्याय

भारतवर्ष मे जब कोई मनुष्य बदीगृह में डाला जाता है तो पूरे सात दिनो तक लगातार न तो उसे भोजन ही दिया जाता है न पानी ही, ताकि वह ठीक ठीक पता दे दवे। चीनिया के यहाँ सरकारी न्यायाधीशों के सिवा अपने निज के लोग भी न्याय चुकाने के निमित्त नियुक्त होते हैं। इसी प्रकार भारतवर्ष में भी होते हैं।

---

(१) खतने का अर्थ है "मुसल्मानी करना"।

कुछ फुटकर बातें

चीते और भेड़िये चीन तथा भारत दोनों देशों में पाए जाते हैं परंतु सिंह किसी देश में भी नहीं होता। मार्ग चलनेवालों को लूटनेवाले मृत्यु दंड पाते हैं। दोनों देशों के लोगों का ख्याल है कि उनके उपास्य देवों की मूर्तियाँ बोलती हैं और उन मूर्तियों के उपासक उनसे बातचीत करते हैं।

मुसलमान लोग जिस प्रकार गला काटकर पशुओं को खाने के निमित्त मारते हैं उस प्रकार भारत तथा चीन के लोग मारा नहीं करते बल्कि पशु की खोपड़ी पर चोटें लगाते हैं यहाँ तक कि वह मर जाता है।

चीन और भारत में शुद्धता-अशुद्धता

अशुद्धता[1] के पश्चात् न तो चीनी ही नहाते हैं न भारतीय ही। चीनियों में यह भी दस्तूर है कि वे लोग शौच के पश्चात् शुद्धता के निमित्त काग़ज़ का प्रयोग करते हैं। भारतवासी भोजन के पहले प्रति दिन अवश्य स्नान कर लेते हैं तब भोजन पाते हैं। स्त्रियाँ जब रजस्वला होती हैं उस समय भारतवासी उनके पास नहीं फटकते, बल्कि उनको पृथक् दूर रखते हैं परंतु चीनी लोग कुछ विचार नहीं करते, यहाँ तक कि रजस्वला होने की अवस्था में भी उनसे भोग करते हैं और उनको पृथक्

---

(१) यहाँ पर अशुद्धता का अभिप्राय उस अशुद्धता से है जो कि स्त्री-गमन के कारण होती है।

नहीं रखते। भोजन से पहले केवल हाथ ही धोने का दस्तूर भारतीयों में नहीं है बल्कि ये लोग सारा शरीर धोते हैं, पर चीन के लोग ऐसा नहीं किया करते।

चीन और भारत का तुलनात्मक वर्णन

भारत देश चीन से अधिक बडा है यहाँ तक कि दूना है। राजा भी सख्या में अधिक हैं। बस्ती के विचार से चीन बडा है। दोनों देशों में तमाम किस्म के वृक्ष पाए जाते हैं पर खजूर का वृक्ष दोनो में से किसी भी देश में नहीं है। बाकी सब प्रकार के फल पाए जाते हैं। अगूर चीन में तो थोडा बहुत होता है परतु भारत में बिलकुल नहीं होता। बाकी दूसरे मेवे चीन में बहुत होते हैं। केवल अनार भारत में अधिक होता है।

चीनियो में विज्ञान नहीं। यहाँ की धार्मिक बातें भारत से ली गई हैं। उनका यह भी मत है कि भारतवालों ने उनके लिये मूर्तियाँ तैयार की हैं और भारतवासी निस्सदेह उनके धार्मिक गुरु हैं। दोनों देशवासी आवागमन के माननेवाले हैं। धर्म सबधी केवल छोटी छोटी बातों में अवश्य कुछ मतभेद है।

विद्या की चर्चा

वैद्यक और दर्शन शास्त्र में भारतीय बडे पडित हैं। चीनी भी वैद्यक जानते हैं। गर्म लोहे के ही प्रयोग (दागने) में वे विशेष रूप से निपुण हैं। ज्योतिष शास्त्र भी चीनी एक हद

तक अच्छा जानते हैं, परंतु भारतवासी ज्योतिष में चीनियों से अधिक योग्यता रखते हैं। दोनों देशों में से किसी देश में भी मुझे कोई मनुष्य ऐसा नहीं दिखाई पड़ा कि जिसने मुसलमानी धर्म ग्रहण किया हो अथवा जो अरबी भाषा बोलता हो।

हाथी घोड़े तथा सैनिक

भारतवर्ष में घोड़े थोड़े ही से पाए जाते हैं। चीन में अवश्य अधिक हैं परंतु चीन में हाथी नहीं हैं। चीनी लोग हाथी रखते भी नहीं, क्योंकि वे हाथी से घृणा करते हैं। भारतवर्ष में सिपाही बहुत से हैं। इनको राजा की ओर से वेतन नहीं दिया जाता, परंतु जब राजा इन्हें युद्ध के लिये बुलाता है तब वे उपस्थित हो जाते हैं। राजा से कुछ खर्च नहीं लेते बल्कि अपने पास से ही बहुत कुछ खर्च करते हैं। चीन में फौजवालों को उसी प्रकार कुछ दिया जाता है जैसे कि अरब में।

जल-वायु तथा वर्षा

चीन बहुत रमणीय तथा सुंदर देश है। भारत के बहुत से प्रांतों में बड़े बड़े रमणीय नगर नहीं हैं। चीन के प्रत्येक भाग में बड़े बड़े सुरक्षित नगर हैं। चीन देश बहुत अच्छा है। लोग बहुत ही कम बीमार हुआ करते हैं। जलवायु अति उत्तम है। अंधा या काना बहुत मुश्किल से कहीं दिखाई पड़ता है बल्कि कोई लुंजा भी बहुत मुशकिल से कहीं देखा जा सकता

है। भारतवर्ष की भूमि का भी ऐसा ही हाल है। नदियाँ दोनों देशो मे बहुत बडी बडी हैं यहाँ तक कि हमारे देश की सब से बडी नदी से भी यहा की नदियाँ अधिक बडी हैं। दोनों देशों में वर्षा भी बहुत अधिक होती है। भारतवर्ष की भूमि मे सुनसान स्थान बहुत से हैं, परन्तु चीन में सारे स्थान बसे हुए हैं।

दोनो देशो का पहनावा

चीन के लोग भारतवासियों से अधिक सुदर होते हैं। इनका वस्त्र अरबवालो के समान होता है। अरबों के समान जुब्बे पहिनते तथा कमरबद बाँधते हैं। इनकी अन्य चाल-ढाल भी अरबों के समान होती है। घोड की सवारी तथा अन्य व्यवहार भी अरबो का सा होता है। भारतवासी कमर तक के दो छोटे छोटे वस्त्र धारण करते हैं। स्त्री पुरुष सभी सोने के कगन पहिनते हैं, जो कि अमूल्य पत्थरों से जडे होते हैं।

चीन से मिले जुले स्थान

चीन से परे तगजगज (طغرغز) नाम की भूमि है। वहाँ तुर्क जाति के लोग बसे हैं। इसीमे मिला जुला तिब्बत का खाक़ान देश है। समुद्र की ओर मिले हुए भाग में सीला (سيلا) नाम का टापू है। इस टापू के लोग गोरे चिट्टे रग के हैं। यहाँ के लोग चीन सम्राट् की सेवा में भेंट भेजते हैं। इनका ख्याल है कि यदि हम चीन सम्राट् के यहाँ भेंट न भेजेंगे तो हमारे यहाँ

वर्षा ही न होगी, क्योंकि आकाश में हमारा कोई आदमी पहुँच ही नहीं सकता जो हमारा वृत्तांत आकाश में जा कहे। इस टापू के बाज़ (पक्षी) श्वेत रंग के होते हैं।

(दूसरा खंड समाप्त)

परिशिष्ट

१—मालद्वीप [पृष्ठ २३

अरब सागर के दक्षिणी भाग में मालद्वीप और लकद्वीप के नामों से टापुओं के जो दो बड़े विख्यात समूह हैं उनमें से मालद्वीप का वर्णन अनेक प्राचीन लोगो ने किया है, परंतु लकद्वीप की चर्चा कहीं नहीं पाई जाती। इसमें संदेह नहीं कि अनेक लेखकों ने मालद्वीप के कुल टापुओं की जो संख्या बतलाई है वह अवश्य भिन्न भिन्न है और बहुत ज्यादा है। एक लेखक का मत है कि द्वीपवासियों का कहना है कि कुल टापू १२ हजार की संख्या में हैं। इसी कारण वहाँ का राजा बारह हजार टापुओं का उत्तराधिकारी समझा जाता है। टापुओं की इस संख्या की सचाई में संशय भरपूर है परंतु इससे टापुओं की एक बड़ी संख्या होने का परिचय मिलता है और सारे लेखकों का मुख्य अभिप्राय भी यही प्रतीत होता है। ऐसी अवस्था में यह नतीजा निकलता है कि लकद्वीप नाम के टापू भी पहले मालद्वीप में सम्मिलित रहे हों और इन दोनों द्वीपों के बीच में इतना अंतर न रहा हो जितना आज कल है, बल्कि दोनों के बीच में पहले छोटे छोटे और बहुत से टापू रहे हों और अब वे समुद्र में नष्ट हो चुके हों। इस प्रकार

सारा मालद्वीप दो भागों में विभक्त होकर दो पृथक् पृथक् नामों से विख्यात हो गया हो।

चौदहवीं शताब्दी ईसवी का सर्वश्रेष्ट मुसलमान यात्री इब्न बतूता अपने यात्रा-विवरण में मालद्वीप के टापुओं की बाबत कहता है कि ये टापू संसार के आश्चर्यों में से हैं। संख्या में दो हज़ार के लगभग हैं। सौ सौ टापुओं अथवा उनसे कम का एक समूह है जो गोल चक्र के आकार का होता है। उसका केवल एक दरवाज़ा होता है जिससे जहाज़ भीतर जा सकते हैं। जहाज़ों के लिये एक पथप्रदर्शक की आवश्यकता होती है, जो उस द्वीप का निवासी हो। वह सारे टापुओं में घुमा सकता है। टापुओं का प्रत्येक समूह एक दूसरे से इतना निकट है कि यदि एक से निकलते हैं तो दूसरे के खजूर के वृक्ष दृष्टिगोचर होने लगते हैं। यदि दिशा भ्रम हो जाय तो पहुँचना कठिन है और वायु जहाज़ को सीलोन या (पश्चिमी) घाट के देश में जा डालती है।

२—अंबर

[पृष्ठ २५

अंबर एक सुप्रसिद्ध सुगंधित वस्तु है किंतु वह क्या है, उसकी उत्पत्ति कैसे होती है, इन सब बातों के विषय में बड़ा मतभेद है। कुछ लोगो का मत है कि यह किसी समुद्री जंतु का मल है। एक मत है कि एक विशेष प्रकार की मछली की आँतों के भीतर किसी बीमारी के कारण कोई चीज पैदा

हो जाती है, वही बाद को अंबर की सूरत ग्रहण कर लेती है। अनेक लोगों का मत है कि एक विशेष प्रकार की मक्खियों का छत्ता होता है उसमे शहद होता है। बरसात में छत्ता गिर जाता है, शहद पानी मे मिल जाता है। छत्ता नदियो के सहारे पहाडो मे समुद्र में पहुँचता है। फिर छत्ता किनारो पर आ लगता है अथवा पानी पर तैरता फिरता है। कुछ मछलिया उसको खाजाती हैं किंतु पचा नहीं सकतीं, इस कारण या तो मर जाती हैं अथवा उनका पेट फूल जाता है और वे थल पर आ पडती हैं। उन्हींके पट से अंबर निकलता है।

मखजनुल अदविया के लेखक का कथन है कि मैंने अंबर के एक टुकड में छोटे छोटे जानवरों के सर, गरदन और शरीर के अन्य भाग देखे।

एक मत यह भी है कि समुद्र की तह में पत्थर से कोई चीज मोमियाई के समान उबलकर निकलती है। फिर लहरों तथा ज्वार भाटे के सहारे ऊपर आजाती हैं, यहाँ तक कि बहते बहते सूखी जमीन पर आ पडता है। अबूजैद सीराफी का यही कथन है। सुप्रसिद्ध मुसलमानी हकीम बूअली सीना का भी यही मत है। अबुलफजल के विचार से अंबर छत्ता है।

मगर्स बढिया अंबर बडा स्वच्छ होता है। तोडा जाता है तो भीतर से पीला सा निकलता है। कसतकी और खशखाशी रंग के अंबर उसमें घटिया होते हैं। काले रंग का तो मन से खराब होता है। मछली के पेट मे जो निकलता है उसको

'मंडल' कहते हैं। मालद्वीप, मेडागास्कर, यमन, हज़रमूत, और डच-गायना में यह बहुत मिलता है। अंबर पानी में हलका होता है। डाक्टर लोग इसका सत निकालते हैं और उसे अंबेरीन कहते हैं। शराब और ईथर में अंबर घुल जाया करता है।

३—नारियल

[पृष्ठ २५

नारियल बढ़िया और बहुतायत के साथ वस्तुतः उसी भूमि में होता है जिस भूमि में खार हो और जहाँ का जल-वायु खारी हो। भारतीय महासागर के लगभग सारे टापुओं की भूमि में खार बहुत है और जल-वायु भी खारी है। इस कारण इन टापुओं में नारियल बहुत होता है। नारियल की उपयो-गिता की बाबत लंका में एक कहावत मशहूर है कि इस वृक्ष को मनुष्य सौ स्थानों पर प्रयोग में लाता है। लकड़ी घर बनाने, आग जलाने, जहाज़ और अन्य घरेलू कार्यों में बर्ती जाती है। पत्तों से छप्पर, चटाइयाँ और टोकरे बनाते हैं। फूल का अचार, मुरब्बा और शराब बनाते हैं। उसके दूध से लोग शराब, ताड़ी और सिरका तैयार करते हैं। गिरी से तेल और शहद बनाते हैं। छिलके का प्याला, हुक्का, दीपक और उसको जलाकर मंजन बनाते हैं। छिलके के ऊपर जो रेशे होते हैं उनसे रस्सियाँ तैयार करते हैं और उन्हें बिस्तरों में भी भरते हैं। जिस प्रकार अरब निवासी खजूर को प्रेमवश

फूफी कहते हैं उसी प्रकार लंका के सिंगाली नारियल की बाबत कहते हैं कि उसको मनुष्य से इतना प्रेम होता है कि यदि मनुष्य की बोली उसके कान में न पड़े तो वह सूख जाता है। लंका के प्रत्येक भाग में नारियल के वृक्ष बहुत से हैं पर पश्चिमी भाग में इनकी संख्या बहुत ही ज्यादा है। सन् १७६७ ई० में लंका की सरकार ने नारियल के वृक्षों पर महसूल लगाने का विचार किया तो वहाँ उपद्रव मच गया।

नारियल का वृक्ष ताड या खजूर के समान अवश्य होता है पर उपयोगिता में उनसे कहीं बढचढ कर है। यह स्वयं उगता और बढ़ता नहीं बल्कि इसकी सेवा करनी पड़ती है, इसलिये यह नगरों के निकट ही होता है और जंगलो में नहीं पाया जाता। मालद्वीप की बाबत हंटर साहब लिखते हैं कि इन टापुओं में नारियल की खेती बहुत होती है। सड़कों के दोनों ओर इसीके वृक्ष लगाए जाते हैं। इसका वृक्ष ३० गज लंबा होता है और गिरी हिंदुस्तान के वृक्षों की गिरियों से बढ़िया होती है।

मालद्वीप के नारियल के विषय में इब्न बतूता ने भी लिखा है कि इन द्वीपों में नारियल के वृक्ष बहुत ही ज्यादा हैं। लोग उसको मछली के साथ खाते हैं। नारियल का वृक्ष अद्भुत होता है। वर्ष में बारह बार फल देता है। प्रत्येक मास में नया फल लगता है। उनमें से कुछ तो छोटे होते हैं, कुछ बड़े, कुछ सूखे और कुछ हरे। नारियल की अन्य उपयोगिताओं

का वर्णन करने के सिवा नारियल की रस्सियों की बावत वे विशेष रूप से लिखते हैं कि लोग नारियल के ऊपर के छिलकों को समुद्र के किनारे गड्ढों में भिगोते हैं। फिर उनको डंडों से कूटते हैं। उसके बाद स्त्रियाँ उसको कातती हैं और जहाज़ के लिये उससे रस्सियां बनाती हैं। वहां के निवासी इन रस्सियों को बेचने के लिये भारत, यमन (अरब) और चीन ले जाते हैं। ये रस्सियां सन की रस्सियों से अधिक मज़बूत होती हैं। भारत और यमन में जहाज़ों की लकड़ियाँ इन्हींसे जोड़ते हैं और लोहे की मेखें प्रयोग में नहीं लाते, क्योंकि मेखें पत्थर के टकराने से टूट जाती हैं परंतु यदि तख्ते इन रस्सियों से जकड़े हुए हों तो चाहे किसी प्रकार की टक्कर हो, जहाज़ को कुछ हानि नहीं पहुँच सकती। नारियल की रस्सी में एक बड़ी विचित्र खूबी यह भी होती है कि चाहे वह निरंतर खारे जल में ही क्यों न पड़ी रहे परंतु वह कदापि नहीं सड़ती। नारियल के सिवा कौड़ियां भी मालद्वीप में बहुत पाई जाती हैं।

मुजमलुत् तवारीख़ नाम का एक इतिहास अबुलहसन जुरजानी ने सन् ४१७ हिजरी अर्थात् १०२६ ई० में लिखा। उसमें लेखक ने मालद्वीप के टापुओं को दो भागों में विभक्त किया है—(१) नारियल की रस्सी के टापू और (२) कौड़ियों के टापू। अलबिरूनी ने भी मालद्वीप के टापुओं का विभाग मौलाना जुरजानी ही के समान किया है।

टापुओं के सिवा बंगाल तथा दक्षिणी भारत के कई भागो में भी नारियल बहुत होता है। दो वर्ष से कुछ अधिक दिन बीते कि मुझे दो बार सूरत जिले के एक छोटे से ग्राम में जाने तथा ठहरने का अवसर पड़ा था। वहाँ नारियल के वृक्ष बहुत थे। वहाँ मैंने देखा कि वृक्षों म फलों के गुच्छे लगते हैं। प्रत्यक गुच्छ में छोटे बडे फल कम से कम छ सात और अधिक से अधिक चौदह पद्रह तक थे। उस स्थान से समुद्र तट लगभग ३ मील दूर है। मुझे बतलाया गया कि नारियल जितना ही खारी जल के निकट होता है उतनाही अधिक फलता है और उतना ही अधिक स्वादिष्ट होता है। जब बोना होता ह तो नारियल को पृथ्वी में नहीं गाड़त बल्कि प्राय कुएँ मे समूचा फल डाल देत हैं। वह कुएँ में पड़ा रहता है। कई मास के बाद अकुर जमता है। फिर उसे निकालकर भूमि में गाड़ते हैं। नारियल को सदैव अधिक जल की आवश्यकता रहती है, पर उगने के समय तो उसे बहुत ज्यादा जल की आवश्यकता पड़ती है। जहाँ पर्याप्त तथा अधिक जल की मात्रा नहीं वहाँ नारियल किसी सूरत मे हो ही नहीं सकता। बोने के लगभग सात आठ साल बाद वह फल देने लगता है और लगभग सौ वर्षा तक बराबर फल देता रहता है। जब वृक्ष फल देना बद कर देता है तब समझा जाता है कि वृक्ष बूढ़ा हो गया। उस समय वृक्ष काट डाला जाता है और दूसरे कामों मे लाया जाता है।

४-कौड़ियाँ

[पृष्ठ २६

सोने चाँदी और ताँबे आदि के सिक्कों तथा काग़ज़ी नोटों आदि का चलन अब बहुत हो चला है। परंतु अब से पचास वर्ष पहले भी कौड़ियो का चलन बहुत था। इससे पहले विशेषतः समुद्र के किनारे के देशों में प्रायः बहुत ही ज़्यादा था। चीन, यूनान, भारतीय टापू, बंगाल, मालद्वीप और अफ़्रीका में प्रायः केवल कौड़ियों से ही लेन-देन होता था। चौदहवीं शताब्दी ईसवी मे बंगाल देश में कौड़ियों के सिवा किसी अन्य सिक्के का चलन ही नही था। सन् १७७८ ई० से १८१३ ई० तक सिलहट (आसाम) की सरकारी माल-गुज़ारी, जो ढाई लाख के लगभग थी, कौड़ियों ही में वसूल की जाती थी। एक रुपए की पाँच हज़ार एक सौ बीस कौड़ियाँ आती थीं। वे जहाज़ में भर भरकर कलकत्ते भेजी जाती थीं। सन् १७८० ई० में एक पैसे की अस्सी कौड़ियाँ आती थीं।

मालद्वीप के टापुओं का हाल लिखते हुए इब्न बतूता कहता है कि इन टापुओं में कौड़ियों का चलन है। कौड़ी एक जंतु होता है। समुद्र मे से कौड़ियों को चुनकर एक गड्ढे में किनारे पर एकत्र करते हैं। वे फिर सूख जाती हैं और उनकी सफ़ेद हड्डी बाक़ी रह जाती है। सौ कौड़ियों को सियाह कहते हैं, सात सौ को फ़ाल, बारह हज़ार को कुत्ती, और लाख को बुस्तू कहा जाता है। चार बुस्तू को एक सुनहरी अशरफ़ी के बदले में बेचते हैं। वे कभी कभी सस्ती भी हो जाती हैं तो

एक अशरफी की दस बुस्तू तक मिलती हैं। बगाल के निवासी इनके बदले चावल दे जाते हैं। बगाल देश में भी कौडियों का चलन है। यमन (अरब) के लोग भी कौडियाँ खरीदते हैं। बोझा जमाने के लिय रेत के बदले कौडियों को ही वे लोग अपने जहाज मे बिछा लेते हैं। सुदान (अफ्रीका) में भी कोडियों का चलन है। अफ्रीका के माली और जूजू देशों मे एक सुनहरी अशरफी के बदले ग्यारह सौ पचास कौडियाँ बिकती हैं।

'मियरूल-मुताअख्खरीन' नामी इतिहास मे बगाल के विषय मे लिखा है कि यहाँ लेन देन कौडी से होता है। कौडी समुद्र पार से लाते हैं। चार कौडियों को गडा बोलते हैं। पांच गडे को बोडी, चार बोडी को पन कहते हैं, सोलह पन का कहावन, और दस कहावन का एक रुपया होता है। (पन = पण, कहावन = कार्षापण, तावे के पुराने सिक्के)।

कौडियाँ अधिकाश स्याम, सोलो (जावा के निकट), फिलीपाइन और मालद्वीप के टापुओं मे होती हैं। हटर साहब अपने गैजेटियर में लिखते हैं कि मालद्वीप में आज कल भी बारह हजार कौडियों को कोटा और गोला भी कहते हैं। एक रुपये की बारह हजार कौडियाँ आती हैं। वहाँ रुपया आज कल भारतवर्ष का चलता है। सन् १७४० ई० में एक रुपए की दो हजार चार सौ कौडियाँ आती थीं। गिनी के

किनारे के काले लोग कौड़ियों को केवल रुपए पैसे के ही समान नहीं इस्तेमाल करते बल्कि स्त्री पुरुष कौड़ियों के गहने बनाकर भी पहिनते हैं। कौड़ियां वहां की बड़ी सफ़ेद और चमकदार होती हैं, इस कारण उनके काले रंग पर अति शोभायमान मालूम होती हैं। ये कौड़ियां उन टापुओं के किनारों पर ढेर की ढेर पड़ी हुई होती हैं। ये हवा से बहकर एकत्र हो जाती हैं। किसी किसी टापू में तो पृथ्वी के खोदने से भीतर से भी कौड़ियां निकलती हैं।

चार कौड़ी का गंडा, दो गंडे की दमड़ी, दो दमड़ी का छदाम, दो छदाम का अधेला और दो अधेले का पैसा—यों ६४ कौड़ी का पैसा भारत के बहुत हिस्सों में माना जाता था। कभी घटा बढ़ी से एक पैसे की ८० कौड़ियां तक हो जाती हैं। पैसा २५, अधेला १२॥, छदाम ६। लिखा जाता है क्योंकि अकबरी क्रम से पैसे के २५ दाम गिने जाते हैं। अब चीज़ों का मोल बढ़ने से कौड़ियों का चलन उठता जाता है।

मुझे एक बड़े बूढ़े अनुभवी वैद्य ने बतलाया है कि जो कौड़ी पीली हो उसको यदि अग्नि में खूब जलाया जाय, फिर कूट कर उसका चूर्ण बनाया जाय और उस चूर्ण में घी मिला-कर उसे ऐसे स्थान में लगाया जाय जहाँ किसी फोड़े तथा घाव हो जाने के कारण चमड़ा न चढ़ता हो तो चमड़ा शीघ्र ही आजाता है।

५—पूज्य पितामह बाबा आदम का पग-चिह्न

अनेक लोगों के मत। [पृष्ठ २७

मुसलमान—अनेक मुसलमान लेखकों का कथन है कि खुदा ने जब परम पितामह हजरत आदम और उनकी धर्मपत्नी हजरत हव्वा को पैदा किया तब उनको स्वर्ग मे रखा। वहाँ इन्होने खुदा की आज्ञा का उल्लघन किया। इसपर खुदा ने इनमे से हजरत आदम को लका और हजरत हव्वा का अरब के जद्दा नगर मे उतारा। हजरत आदम ने एक पैर लका के नूद नाम के पहाड पर रक्खा जहाँ कि पग का चिह्न है, दूसरा समुद्र अथवा किसी अन्य स्थान मे रक्खा।

हिंदू—वह पग-चिह्न जिसको कि मुसलमान लोग हजरत आदम के पग का चिह्न बतलाते हैं हिंदुओं के मत मे विष्णु-पद है। ऐसे छोटे बडे कई विष्णुपद हिंदुस्तान के भिन्न भिन्न स्थानों में हैं। कई इसे शिवजी का पदचिह्न कहते हैं।

बौद्ध—सिंहल इतिहास की एक महत्वपूर्ण प्राचीन पुस्तक महावंशो है। लका के विषय में इसमे बहुत कुछ लिखा है। अंग्रेजों के मतानुसार पाँचवीं शताब्दी ईसवी के मध्यकाल मे यह रची गई थी। इससे साबित होता है कि बौद्ध धर्म के अनुयायी इस पग-चिह्न को शाक्य मुनि अर्थात् महात्मा बुद्ध का पवित्र पग-चिह्न समझते हैं। बौद्ध धर्म के अनुयायियों का ख्याल है कि इसी पहाड पर से

महात्मा बुद्ध आकाश को चढ़े थे। बुद्ध के ऐसे पदचिह्न हिंदुस्तान में कई जगह मिले हैं।

टेनेंट—सर एमर्सन टेनेंट का कथन है कि अब यह स्थान बौद्ध-धर्म वालों के हाथ में है। इसको 'श्रीपद' कहते हैं। यह पहाड़ लंका के दक्षिणी भाग में है। 'कोहआदम' उसकी सब से ऊँची नहीं, परंतु सब से अधिक सुप्रसिद्ध चोटी है। वह समुद्र के धरातल से लगभग ७००० फुट ऊँची है। वर्तमान काल में इस पहाड़ को देखने के लिये बहुधा लोग कोलंबो और रतनपुर के रास्ते से जाते हैं। समुद्र तट से चोटी ६५ मील की दूरी पर है। इसमें से दो तिहाई मार्ग मैदान का है। रतनपुर से केवल घोड़े और पैदल का मार्ग रह जाता है। मार्ग का प्रारंभिक भाग ऐसे जंगल में से है कि घने वृक्षों के कारण वहाँ सूर्य दिखलाई भी नहीं पड़ता। यात्रियों के लिये अनेक स्थानों पर धर्म-शालाएँ हैं। केवल ९ मील में ७००० फुट की ऊँचाई चढ़नी पड़ती है। ६ मील तक असली चोटी दीख नहीं पड़ती। जब तीन मील की चढ़ाई बाकी रह जाती है तब चोटी दिखाई पड़ने लगती है। उसके पश्चात् बिल्कुल सीधी चढ़ाई है। पत्थर को काट काट कर सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। इन सीढ़ियों के पश्चात् ज़ंजीरों के सहारे चढ़ना पड़ता है। इन ज़ंजीरों पर से यदि कोई नीचे देखता है तो सिर घूम जाता है। यदि तनिक भी पैर चूक जाय तो मनुष्य

का कुछ पता न लगे। प्रत्येक चढनेवाले को जतला दिया जाता है कि वह नीचे की ओर न देखे और पैर सँभाल सँभाल कर रक्खे। इसके पश्चात् लोहे की सीढी ४० फुट ऊँची है। उसके पश्चात् एक चौतरा मिलता है। जहाँ एक छाई हुई जगह के नीचे पवित्र पग-चिह्न है। पग-चिह्न की लबाई पाँच फुट है। पग का चिह्न साफ साफ नहीं है, केवल एक गड्ढा लवा सा है। इस चोटी के ऊपर से पृथ्वी और समुद्र का दृश्य अति सुहावना मालूम होता है।

इब्न बतूता—यह (कोह-आदम) पहाड समार के ऊँचे पहाडो में से है[1]। यद्यपि यह समुद्र तट से नौ मजिल दूर है तथापि हम ने उसको समुद्र में से देखा था। जब हम उसके ऊपर गए तब बादल हमें नीचे दिखाई पडते थे और पहाड की जड और हमारे बीच मे आड से हो गए थे। इस पहाड में ऐसे बहुत से वृक्ष होते है जिनके पत्ते कभी नहीं झडते और जिनके फूल अनेक रगो के होते हैं। लाल गुलाब का फूल हथेली के बराबर होता है। लोगो का ख्याल है कि उस फूल में 'अल्लाह' और 'मुहम्मद' का नाम प्रकृति की लेखिनी से लिखा हुआ होता है।

उस पहाड में क़दम (पग-चिह्न) तक जाने के दो मार्ग हैं। एक 'बाबा' का मार्ग और दूसरा 'मामा' का मार्ग,

(१) आदम पहाड की सब से ऊँची चोटी ७३७६ फुट ऊँची है।

अर्थात् परम पितामह पूज्य बाबा आदम और उनकी धर्मपत्नी अम्मा हव्वा का कहलाता है। 'मामा' का मार्ग सुगम है। उस मार्ग से यात्री वापस आते हैं। यदि कोई उस मार्ग से जाता है तो समझा जाता है कि उस जाने वाले ने पग-चिह्न का दर्शन ही नहीं किया। 'बाबा' का मार्ग बड़ा कठिन है। उसपर चढ़ना अति दुस्तर है। पहाड़ के नीचे एक खोह है, वहीं 'बाबा' के मार्ग का दरवाज़ा है। उस दरवाज़े को सिकंदर का बनाया कहते हैं। यहीं पानी का एक स्रोत भी है। पहले समय के मनुष्यों ने पहाड़ों में सीढ़ियाँ खुदवा रखी हैं। उन्हीं पर चढ़ते हैं। उनमें लोहे की कीलें गाड़कर उन्हींके सहारे लोहे की ज़ंजीरें लटकाई हैं कि चढ़नेवाला उनको पकड़े हुए चढ़े।

ज़ंजीरें संख्या में कुल दस हैं। दो पहाड़ के नीचे हैं जहां कि दरवाज़ा है, सात क्रम क्रम से इन दोनों के बाद हैं। दसवीं ज़ंजीर को 'ज़ंजीर शहादत' कहते हैं क्योंकि जब मनुष्य वहाँ पहुँचता है और पहाड़ के नीचे की ओर देखता है तब उसके होश उड़ जाते हैं और गिरने के भय से वह 'कलमः शहादत'[1] पढ़ना आरंभ कर देता है।

---

(१) 'कलमः शहादत' अर्थात् हज़रत मुहम्मद साहब के ईश्वरी दूत होने की गवाही का वाक्य यह है—"अशहदो अन ला इलाहा इल्लल्लाहो व अशहदो अन्ना मुहम्मदन् अब्दहू व रसूलहू।" (اسهدان
लाइलाह الاالله واشهدان محمداً عبدهٗ ورسوله) इसका अनुवाद

दसवीं जजीर से लेकर 'खोहखिजिर' तक दस मील का फासला है। वह एक फैले हुए स्थान मे है। उसके निकट पानी का एक स्रोत है। वह हजरत खिजिर साहब पैगबर से सबध रखता है। उस स्रोत म मछलियाँ बहुत सी हैं। कोई मनुष्य उनको पकड नहीं सकता। उसके निकट मार्ग के दोनो ओर दो हौज हैं। ये पहाड मे खुदे हुए हैं। दर्शनार्थ जानेवाले सब यात्री 'खोहखिजिर' में अपने पास का सारा सामान छोड जाते हैं, फिर दो मील ऊपर की यात्रा करते हैं जहाँ कि 'पग-चिह्न' है। पूज्य पितामह बाबा आदम के पग का चिह्न एक सख्त काले पत्थर मे है। वह ऊँचे स्थान पर है और मैदान मे पडा हुआ है। (पूज्य बाबा आदम का) पवित्र पग पत्थर में घुस गया था और उसका निशान हो गया था। उसकी लबाई ग्यारह बित्ते की है।

पहले यहाँ चीन के निवासी आते थे। वे अगूठे की जगह का पत्थर तोडकर ले गए और उसे उन्होने (चीन के) जैतून नामी नगर के एक मदिर मे जा रक्खा। वहाँ भी चीनवासी दर्शन के निमित्त बहुत आते हैं। पग-चिह्न के पास पत्थर मे नौ गड्ढे खुदे हुए हैं। हिंदू यात्री

यह है—"मै साक्षी होता हूँ कि कोइ भी देव पूजने योग्य नहीं है सिवाय अद्वितीय परमात्मा के और साक्षी हूँ कि हजरत मुहम्मद साहब ईश्वर के बंदे और ईश्वर के रसूल हैं।"

इन गड्ढों में सोना, लाल और मोती भर जाते हैं। इस कारण फ़क़ीर लोग जब 'खोहख़िज़िर' में पहुँचते हैं तब जल्दी करके सब से पहले पहुँचते हैं ताकि जो कुछ उन गड्ढों में मिले, ले लेवें। हम जब आए तब बहुत थोड़ा सोना और रत्न उनमें थे। वह सब हमने अपने मार्ग बतलाने वाले को दे दिया। प्रथा यह है कि दर्शन करनेवाले यात्री 'खोहख़िज़िर' में तीन दिन तक ठहरते हैं और तीनों दिन बराबर सायं प्रातः पग-चिह्न के दर्शन के निमित्त आते हैं, सो हमने भी ऐसा ही किया। जब तीन दिन बीत गए तो 'मामा हव्वा' के मार्ग से वापस आए।

नाप—पग-चिह्न की लंबाई वर्तमान काल में पाँच अथवा साढ़े पाँच फ़ुट है। सर एमर्सन टेनेट का कथन है कि 'पग-चिह्न' की लंबाई पाँच फ़ुट है। इब्न बतूता ने वह ग्यारह बित्ते बतलाई है। इस प्रकार भिन्न भिन्न लेखकों तथा यात्रियों ने भिन्न भिन्न लिखा है। सुलैमान सौदागर ने पग-चिह्न की लंबाई सत्तर हाथ लिखी है। लंका निवासियों मे यह बात प्रसिद्ध है कि पग-चिह्न की लंबाई प्रत्येक मनुष्य को उसके विश्वास के अनुसार दिखाई पड़ती है। इसपर एक साहब कहते हैं कि सुलैमान सौदागर ने उसकी लंबाई सत्तर हाथ लिखी इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उसका विश्वास सब से बड़ा था।

जंजीरें—इब्न बतूता तथा सर एमर्सन टेनेंट दोनो जजीरो का वर्णन करते हैं। इनके बारे में अशरफ नामी एक ईरानी कवि अपने ग्रथ सिकदरनाम मे लिखता है कि सिकदर जब लका मे गया था तो उसने इन जजीरो को चढने के लिये बनवाया था। इब्न बतूता ने दरवाजे का सिकदर से सबध जोडा है, परतु यह किंवदती ही है क्योंकि सिकदर लका मे गया ही नही था। सभव है कि उसने स्वप्न मे लका देखी हो। जजीरें वर्तमान समय मे भी मौजूद हैं। उनपर कुछ खुदा भी है किंतु वह पढा ही नहीं जाता। वस्तुत यह बौद्ध स्थान है और जजीरें बौद्ध यात्रियो तथा भिक्षुओं के सुभीते के लिये धर्मात्माओं ने लगवाई हैं।

६–सुगंधित लकड़ियाँ अर्थात् ऊद [पृष्ठ २७

'सुगधित लकडियों' से जिससे अभिप्राय है उसको अरबी मे 'ऊद' (عود) कहते हैं। उसका वृक्ष बिलूत के वृक्ष के समान होता है। पत्ते भी बिलकुल बिलूल के पत्तो के समान होते हैं। छाल पतली होती है। जडें बहुत लबी होती हैं और उनमे से इत्र की सी सुगधि आती है। परतु लकडी और पत्तो मे सुगधि नही हुआ करती। वृक्ष पूरे तौर से बढने नहीं पाता और न उसमें कोई फल ही लगता है। अनेक लेखकों ने ऊद के विषय मे जो कुछ लिखा है उससे स्पष्ट पता लगता है कि ऊद कई प्रकार का होता है, और स्याम देश की

पूर्वीय भूमि में ऊद बहुत बढ़िया और बहुतायत से होता है। वहाँ के लोग लकड़ी को गीली ज़मीन में गाड़ देते हैं। कच्ची कच्ची लकड़ी गल जाती है, बाकी को जब निकालते हैं तो उसमें सुगंधि पैदा हो जाती है। यह भारतवर्ष में बिलकुल नहीं होती परंतु अरब और ईरान में यह 'ऊद हिंदी' के नाम से ही विख्यात है। इसका कारण यह है कि उन देशों में यह वस्तु यहीं से होकर जाती थी। अबुलफ़ज़्ल ने लिखा है कि गुजरात के एक राजा ने इसको मँगवाकर चांपानेर में लगवाया था।

७—शंख

[पृष्ठ २७

शंख वास्तव में कौड़ी ही की एक जाति है। सारे मंदिरों तथा देव-स्थानों में बहुधा जो शंख बजाए जाते हैं वे साधारण शंख हैं। उनसे भी बड़े बड़े शंख होते हैं। उनका आकार-प्रकार भी बड़ा विलक्षण होता है। वे बहुत ज़ोर लगाने से बजते हैं। उनकी ध्वनि भी बहुत दूर तक पहुँचती है। गीता के प्रथम अध्याय से ही पता लगता है कि महाभारत के मुख्य मुख्य योद्धाओं के पास बड़े बड़े शंख थे। उन शंखों के भिन्न भिन्न नाम थे। युद्ध से पहले खूब शंख-ध्वनि हुई थी, मानो शंखों से बिगुल अथवा फ़ौजी बाजे का काम लिया जाता था।

बड़े बड़े शंखों के सिवा बहुतेरे शंख बहुत छोटे छोटे भी होते हैं, यहाँ तक कि कौड़ियों के बराबर भी होते हैं। मैंने

गुजरात में समुद्र के तट पर ऐसे छोटे छोटे शख बहुत देखे हैं। उनकी आकृति तथा रंग रूप बड़ा विचित्र होता है। वे बड़े सुंदर और नाना प्रकार के भी होते हैं। समुद्र-तटवासी उनमें छेद करके माला गूँधते हैं, अथवा उनकी झालरें बनाकर घरो के दरवाजों पर लगा देते हैं। कई दरवाजों पर मैंने ऐसी झालरे लगी हुई देखीं। वे बड़ी सुंदर मालूम होती थीं। मेरे विचार से यदि छोटे छोटे शख ओवरकोट के बटनों तथा बड़े बटनों के निमित्त प्रयोग किए जायँ तो वे उपयोगिता और सौंदर्य दोनों में उत्तम होंगे।

८—कपूर [पृष्ठ २८

'फनसूर' शब्द किसी ग्रंथ में 'कनसूर', किसी में 'कैसूर' और 'पनसूर' दिया हुआ है। ठीक बात यह है कि सुमात्रा टापू में 'पनसूर' नाम का स्थान है। उसी स्थान के इलाके या उसी स्थान का नाम बालूस या बारूस भी है। वहाँ का कपूर बढ़िया होता है। इस कारण उस स्थान के कपूर का नाम ही स्थान के नाम से पड़ गया है। 'आईन अकबरी' में बढ़िया फनसूरी कपूर का मूल्य तीन रुपए से लेकर बीस रुपए प्रति तोला लिखा हुआ है। इसीका दूसरा नाम 'भीमसेनी' लिखा है। संस्कृत में एक द्वीप का नाम ही 'कर्पूर' अर्थात् 'कपूरद्वीप' है। संभव है कि सुमात्रा का ही यह नाम रहा हो। फनसूर सुमात्रा के पश्चिमी भाग में आचीन स्थान के दक्षिण में है। सत्रहवीं शताब्दी

ईसवी के मध्य काल में हमज़ा फनसूरी नामी एक सुप्रसिद्ध सूफी कवि यहीं के हुए हैं।

कई लेखकों ने फ़नसूर को कुछ का कुछ लिख मारा है और ऐसा मालूम होता है कि उन्हे ठीक ठीक पता नहीं चला था। परंतु सुलैमान के लेख से भी यही स्पष्ट नतीजा निकलता है कि सुलैमान को भी ठीक ठीक पता नहीं लगा था, क्योंकि उसके अरबी लेख से ध्वनि निकलती है कि फ़नसूर कपूर खानों से निकलता है। किंतु ठीक बात यह है कि फ़नसूरी अथवा किसी अन्य प्रकार का कपूर खान से नहीं निकलता। इस कारण उस स्थान पर मूल अरबी का भावार्थ यह लिया जाय कि वहाँ फ़नसूरी कपूर बहुत ज्यादा होता है तो अनुचित न होगा।

बात यह है कि काफ़ूर का वृक्ष होता है। एक लेखक का कथन है कि काफ़ूर का वृक्ष जावा द्वीप में इतना बड़ा होता है कि उसकी छाया में सौ मनुष्य विश्राम कर सकते हैं। एक लेखक कहता है कि काफ़ूर के वृक्ष की ऊँचाई दो सौ फुट तक होती है। वृक्ष के ऊँचे भाग पर जाकर तने में छेद कर देते हैं तो उसमें से पानी सा निकलता है और वह जम जाता है। नीचे के भागों में काफ़ूर के डले छाल के नीचे पाए जाते हैं। ये डले तौल में आध पाव से लेकर आध सेर तक होते हैं। इब्न बतूता कहता है कि काफ़ूर का वृक्ष बिल्कुल बाँस के समान होता है, किंतु पोरियाँ लंबी और मोटी

होता है। काफूर पोरियो के भीतर से निकलता है। सब से बढ़िया काफूर बड़ा ठंडा होता है। उसको यदि कोई थोड़ा सा भी खा लेवे तो वह ठंडा हो जाता है। परंतु सच तो यह है कि असली काफूर की प्राप्ति में बहुत कठिनाई उठानी पड़ती है।

कहा जाता है कि कपूर-वृक्ष के सिवा कुछ अन्य वृक्षों से भी कपूर निकाला जाता है और बहुधा वही वर्ता जाता है। सुमात्रा और जावा के सिवा चीन के दक्षिणी भाग, जापान और फारमोसा में भी कपूर के वृक्ष हैं अथवा ऐसे वृक्ष होते हैं जिनसे कपूर निकाला जाता है। विधि यह है कि वृक्ष के छोटे छोटे भाग, शाखें, जड़ और पत्ते सहित सब के सब पानी में भिगो दिए जाते हैं। कुछ दिनों के बाद जब उनका सार पानी में उतर आता है तब पानी को अग्नि पर उड़ाकर कपूर निकाला जाता है। उस समय वह बिल्कुल साफ नहीं रहता, बाद को अच्छी तरह से साफ किया जाता है और ठीक ठाक करके बाजारों में बेचा जाता है।

९—पतंग की लकड़ी [पृष्ठ ३०

'पतंग की लकड़ी' का अभिप्राय जिससे है उसको अरबी में 'बक्कम' कहते हैं। यह लकड़ी भारत तथा भारतीय सागर के टापुओं के सिवा अमेरिका में भी बहुत होती है। अब यह दक्षिणी अमेरिका के ब्राजील देश से आती है, इस कारण अंग्रेजी में इसको ब्राजील की लकड़ी कहते हैं। फ्रांसीसी में भी

ब्राज़ील ही कहते हैं। इसका वृक्ष बहुत बड़ा और कांटेदार होता है। यह दक्षिणी भारत के पश्चिमी भाग तथा लंका में भी बहुत होता है। पत्ता बादाम के पत्ते के समान होता है। फूल पीले, और फल गोल तथा लाल होते हैं। फलों को भिगो-कर रंग निकाला जाता है। रंगरेज़ पहले इसके लाल रंग से बहुत काम लेते थे। गुलाल जो होली में प्रयोग किया जाता है कहीं कहीं इसी लकड़ी के बुरादे से बनता है।

गोवा से लेकर ट्रावंकोर तक यह स्वयमेव उत्पन्न होता है। मोपले (मलाबार के अरब मुसलमान लोग इसको बोते भी हैं। इन मुसलमानों में से किसीके घर जब कोई लड़की पैदा होती है तब उसके जन्म के बाद ही पतंग की लकड़ी के वृक्ष लगा दिए जाते हैं। चौदह पंद्रह वर्ष में जब लड़की विवाह योग्य होजाती है उस समय वे वृक्ष भी काटने योग्य हो जाते हैं। उनको काटकर और बेचकर वे लड़की को दहेज़ देते हैं।

१०—बेंत

[पृष्ठ ३०

बेंत भी बड़े काम का पदार्थ है। किसी किसी स्थान में रस्सी का सारा कार्य्य बेंत के छिलके ही से लिया जाता है। इसके पत्ते खजूर के पत्तों के समान होते हैं परंतु आकार में छोटे होते हैं। यह कहना कि—

फूले फले न बेंत जदपि सुधा बरसें जलद

सर्वथा ठीक नहीं, क्योंकि बेत फलता है और उसके फल

भी खजूर ही के समान होते हैं। फल गला पकड़नेवाला होता है परंतु लोग उसे खाते हैं।

बेत की कई किस्में हैं। एक बेंत की शाखें अंगूठे के समान मोटी होती हैं और उसमें दूर दूर पर गिरहें होती हैं। यही बेंत सब से बढ़िया होता है। यह अधिकाश सुमात्रा और जावा के टापुओं मे होता है। दूसरी किस्म का बेंत बेल के समान फैला करता है। उसकी शाखें कुछ पतली और काटेदार होती हैं। उसीसे ही कुर्सी और पालकी आदि की विनाई की जाती है। ऐसा बेंत बंगाल मे भी बहुत होता है। तीसरे प्रकार का बेंत बड़ा पतला होता है। उसम न तो काँटा ही होता है और न फल लगता है। उसीसे सीतलपाटी बनाई जाती है। ऐसा बेंत केवल सिलहट (आसाम) में नदी के किनारे पैदा होता है। कहा जाता है कि ऐसे बेंत से ही ऐसी मुलायम सीतलपाटियाँ भी तैयार होती हैं कि साँप भी उनपर से चलता हुआ फिसलता है।

११--जहाज़ [पृष्ठ ३०

अनेक लोग जब यह सुनते हैं कि पहले भी जहाज बनाए जाते थे अथवा अब से एक हजार वर्ष या पाँच सौ वर्ष पहले भी जहाजों से काम लिया जाता था तब बड़ा आश्चर्य करते हैं। इसमे संदेह नहीं कि पहले के जहाज ऐसे नहीं रहे होंगे जैसे कि आज कल के हैं, तथापि उपयोगिता के लिहाज स वे बुरे भी

नहीं थे। सुलैमान के यात्रा-विवरण से स्पष्ट पता चलता है कि चीन के लोग नवीं शताब्दी ईसवी में भारत तथा अरब तक और भारत तथा अरब के लोग चीन तक जहाज़ों द्वारा ही व्यापार करते और भारतीय महासागर से होकर गुज़रते थे, अनेक टापुओं में पहुँचते थे। उस समय तो यूरोपवाले बड़ी समुद्रयात्राएँ नहीं कर सकते थे।

कुछ दिन हुए मैं गुजरात देश में गया था। उस समय समुद्र दर्शन के निमित्त टीथल पहुँचा। वहाँ एक सादी नौका के सहारे समुद्र के अंदर गया। उस बड़ी नौका में कोई कल नहीं थी, वह बिल्कुल प्राचीन प्रणाली की थी। परंतु उसके सहारे ऐसे आनंद की यात्रा हुई कि जिसको मैं ही जानता हूँ। वहीं मैंने बहुत बड़ी बड़ी नौकाएँ भी देखीं जिनको बिना किसी प्रकार की कल के मल्लाह लोग बसरा ले जाते हैं। वे मल्लाह केवल पुराने ढंग के बादबानों से ही काम लेते हैं। उन नौकाओं से पहले ज़माने के जहाज़ों की बाबत बहुत कुछ अनुमान बड़ी सुगमता से किया जा सकता है। इसके सिवा भारतीय जहाज़ों की बाबत श्री राधाकुमुद मुकरजी, एम० ए०, पीएच० डी०, की पुस्तक 'A History of Indian Shipping and Maritime Activity' से भी बहुत कुछ पता लग सकता है।

अब से लगभग सात सौ वर्ष पहले चीन में जहाज़ कैसे होते थे, इस बात को जानने के लिये इब्न बतूता के लेख से

बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। चीन की यात्रा का हाल लिखते हुए इब्न बतूता कहता है कि चीन के जहाज तीन प्रकार के होते हैं। बडे जहाजों को जनक कहते हैं, मझोले को जव और छोटे को ककम। बडे जहाज मे बारह मस्तूल (पाल) होते हैं और छोटे मे तीन। ये मस्तूल बेत के बने हुए होते हैं। पालों की बुनावट चटाई के समान होती है। उनको कभी नीचे नहीं गिराया जाता। हवा की ओर उनको फेर दिया जाता है। जब जहाज लगर डालते हैं उस समय भी पाल खडे ही रहते हैं और हवा के साथ उडते रहते हैं। प्रत्येक जहाज मे एक हजार मनुष्य होते हैं। छ सौ तो जहाज मे सबध रखनेवाले होते हैं और चार सौ सिपाही होते हैं। इनमें से कुछ बाण चलानेवाले और चरखी के सहारे बारूद फेंकने वाले होते हैं। प्रत्येक बडे जहाज के साथ तीन छोटे जहाज होते हैं। इनमे से एक बडे मे आधा, दूसरा उसका तिहाई और तीसरा बडे का चौथाई होता है।

यह जहाज चीन के जैतून नगर तथा बड चीन मे बनाए जाते हैं। इनके बनाए जाने की तरकीब यह है कि प्रथम लकडी की दो दीवारे बनाते हैं। फिर दोनो दीवारों को मोटी लकडियों से मिलाते हैं। इन लकडियो के लबान तथा चौडान में तीन तीन गज की मेखें जडते हैं। जब ये दीवारें तैयार होकर इस प्रकार मिला दी जाती हैं तब इन दीवारों पर फर्श बनाते हैं वही जहाज के सब से नीचे के हिस्से का फर्श होता

है । उनको फिर समुद्र में डाल देते हैं । यह ढाँचा पानी में किनारे पर ही पड़ा रहता है । लोग आकर उसपर नहाते हैं और पेशाव, पाखाना करते हैं । कुछ काल पीछे वह पूर्ण रूप से बनाया जाता है । नीचे के लट्ठों के पास चप्पू लगाए जाते हैं जो खंभों के समान मोटे होते हैं । एक एक चप्पू पर दस से लेकर पंद्रह तक मल्लाह खेने का काम करते हैं । ये मल्लाह खड़े होकर खेया करते हैं । प्रत्येक जहाज़ की चार छतें होती हैं । सौदागरों के लिये घर, कोठरियाँ, और खिड़कियाँ बनी हुई होती हैं । कोठरी में रहने के स्थान के सिवा संडास भी होते हैं । उसका दरवाज़ा भी होता है जिसपर ताला लग जाता है । जो मनुष्य कोठरी लेता है वह दरवाज़ा बंद कर लेता है और अपने साथ स्त्रियों को ले जा सकता है । कोठरी में रहनेवाले को किसी किसी समय जहाज़वाले जान भी नहीं सकते कि जहाज़ में है भी या नहीं । जब किसी स्थान में जहाज़ लंगर डालता है और वहाँ मेल-जोल होजाता है तो मालूम होता है कि अमुक भी जहाज़ में है ।

मल्लाह और सिपाही जहाज़ ही में रहते हैं । उनके लड़के वाले भी जहाज़ ही में रहते हैं । हौज़ के समान बड़े बड़े गमले लकड़ियों के बनाते हैं । उनमें तरकारियाँ और अदरक आदि बो देते हैं । जहाज़ का प्रधान अधिकारी बड़े ठाटबाट वाला होता है । जब वह थल में जाता है तब बाण चलानेवाले और नौकर लोग अस्त्रशस्त्र बाँधे हुए उसके आगे आगे चलते हैं ।

गाजे बाजे भी साथ होते हैं। जब किसी ऐसे स्थान पर पहुँचते हैं जहाँ कि ठहरना चाहते हैं तब अपने नेजों को उस स्थान के दोनों ओर गाड देते हैं। जब तक वहाँ ठहरे रहते हैं नेजे गड़े रहते हैं। चीन के लोग कभी कभी कई जहाजों के स्वामी होते हैं। अधिकारी जहाजों पर रहते हैं। चीनवालों से अधिक धनी किसी अन्य स्थान के लोग नहीं हैं।

जानना चाहिए कि आज कल भी चीन देश में जहाज को जनक (Junk) ही कहते हैं। एक हजार से भी अधिक वर्ष बीत रहे हैं जब कि चीन के लोग मलाबार के किनारे जहाजों को लेकर व्यापारार्थ बहुत ही आया करते थे। इन लोगों ने आना कब छोड़ा इस विषय में कुछ ठीक कहा नहीं जा सकता। एक ईसाई लेखक का कथन है कि कालीकट के राजा ने एक बार चीनियों के साथ बुरा व्यवहार किया। वे लोग दूसरी बार बहुत जोर बाँध कर आए और कालीकट के बहुत से निवासियों का वध करके चले गए, फिर नहीं आए। इसके पश्चात् वे मछलीपट्टन में जो पूर्वीय तट पर है व्यापार करने लगे।

इब्न बतूता जब चीन गया था तब वहाँ पहुँचने से पहले जहाज द्वारा पैसिफिक महासागर से पार होने का जो वृत्तान्त उसने दिया है उससे भी चीन के जहाजों की बाबत थोड़ा बहुत पता लग जाता है। वह कहता है कि इस समुद्र में न तो वायु है न लहर और न झकोरा ही है। इसी कारण प्रत्येक

जहाज़ के साथ तीन और जहाज़ होते हैं। उन सभों को मल्लाह खेते हैं तब जहाज़ चलता है। बड़े जहाज़ में भी बीस चप्पू एक ओर और बीस ही दूसरी ओर होते हैं। प्रत्येक चप्पू खंभे के समान होता है और उसपर तीस तीस मनुष्य काम करते हैं। प्रत्येक में दो बड़ी बड़ी रस्सियाँ बँधी हुई होती हैं। जब एक समूह के लोग उनको पकड़ कर खींच और छोड़ देते हैं तब दूसरे लोग अपनी रस्सी को खींचते हैं। खींचने के समय ये लोग मीठे स्वर से गाते हैं और 'लाली' 'लाली' करते हैं।

इब्न बतूता ने चीनी जहाज़ों के समान भारतीय जहाज़ों के विषय में विशेष रूप से कुछ नहीं लिखा, परंतु पश्चिमी घाट की यात्रा का वृत्तांत देते हुए एक अवसर पर जो कुछ उसने लिखा है उससे उस समय के भारतीय जहाज़ों का एक छोटा मोटा चित्र खींचा जा सकता है। भड़ौंच के समीप कंधार नामी एक बंदर था। इब्न बतूता ने वहाँ से अपने चलने का हाल लिखा है, और कहा है कि एक जहाज़ में साठ चप्पू थे। लड़ाई के समय जहाज़ पर छत डाल लेते थे जिससे चप्पू वालों को पत्थर नहीं लग सकता था। जाकर नामी जहाज़ में मैं सवार था। उसमें पचास बाण चलानेवाले और पचास हवशी सिपाही थे।

१९—चीन में बाँस [पृष्ठ ३५

चीन में बाँस बहुत ही ज्यादा होता है और बहुत ही जल्दी

बढता है। बास की एक डाली थोड ही वर्षों मे बाँसो का झुड बन जाती है। चीन के निवासी भी इसका प्रयाग इतने कामों मे करते हैं कि उनकी गणना भी बहुत कठिन है। बाँस में यदि फूल आजाता है और उसमे बीज पड जाता है तो वह स्वय सूख जाता है। अत बाँस की पुरानी तथा पक्की डालियों की बराबर काट छाँट होती रहे और उसमे फूलफल न लगने पावे तो चीन मे बाँस के पेड सैकडों वर्ष तक रह सकते हैं। पुराने बासो के जोडा के भीतर से 'बसलोचन' निकलता है जो भारत मे कई रोगो की श्रोपधियो में प्रयाग किया जाता है। चीनी लोग इसको प्राय प्रत्यक रोग के निमित्त बर्तते हैं।

एक लेखक का मत है कि चीन में बास साठ प्रकार का होता है। कोई रग मे पीला, कोई हरा और कोई काला होता है। कोई कोई बाँस पचास हाथ तक ऊँचा बढता है और नीचे के भाग का घेरा एक गज तक होता है। इब्न बतूता कहता है कि चीन में थाल भी बडा अनोखा बनाते हैं। थाल के बनाने में बाँस के टुकड बडी चतुराई से जोडे जाते हैं और लाल चमकीली गोंद से उसको रँगते हैं। दस थाल एक दूसर पर रक्खे जाते हैं, परतु ये इतने पतले होते हैं कि देखनेवाले को एक ही थाल दिखाई पडता है। एक ऊपरी ढकना इन सभों को ढाँक लेता है। बाँस की रकाबियाँ ऐसी विचित्र बनती हैं कि ऊपर से फेंक देने पर भी नहीं टूटतीं। गर्म भोजन यदि उनमे डाल दिया जाय तो वह न तो ऐठती ही

हैं, न उनका रंग ही बदलता है। इन रकाबियों को लोग हिंदुस्तान, ख़ुरासान तथा अन्य देशों में लेजाते हैं।

१३–कोलम [पृष्ठ ३८

कोलममली का नाम केवल 'कोलम' ही था। यह मलाबार के किनारे है, इस कारण ही शायद कोलममली लिखा है। इसकी आबादी पंद्रह हज़ार के लगभग है। शायद अंग्रेज़ी छावनी भी यहाँ है। अबुलफ़िदा ने इसको मिर्च के देश का अंतिम नगर कहा है और लिखा है कि इस नगर में एक अति सुंदर मसजिद और एक बाज़ार मुसलमानों का है। प्राचीन काल से फारस और चीन के व्यापार का यह नगर बड़ा भारी केंद्र था। सन् १५०० ई० तक कोलम व्यापार का एक बड़ा भारी प्रधान नगर रहा। इसके बाद इसकी अवस्था गिरती ही गई।

चौदहवीं शताब्दी के मध्य में कोलम जैसी अवस्था में था उसकी बाबत इब्न बतूता के लेख से बहुत कुछ मालूम हो सकता है। इब्न बतूता अपनी यात्रा का हाल देते हुए लिखता है कि मलाबार में यह नगर सबसे अधिक सुंदर है। बाज़ार बहुत अच्छे हैं। वहाँ के सौदागरों को सूली कहते हैं। वे बड़े धनाढ्य हैं। बाज़ सौदागर जहाज़ का जहाज़ भरा हुआ ख़रीद लेते हैं और अपने घर में व्यापार के लिये रख लेते हैं। मुसलमान सौदागर भी इस नगर में बहुत हैं।

मुसलमानो की इस नगर में बड़ी इज्जत है। इस नगर की जामामसजिद भी विचित्र है। मलाबार के जितने नगर हैं उनमें से यह नगर ही चीन से सब से अधिक निकट है। इसी कारण चीन के बहुत से लोग यहाँ सफर करने आते हैं।

कोलम तो एक नगर अवश्य ही था। किंतु इब्न बतूता के समय अर्थात् चौदहवीं शताब्दी ई० में भी कोलम के नाम से एक छोटा सा राज्य भी था जो न्याय का आदर्श था। इब्न बतूता राजा का नाम तिरोरी लिखता है और कहता है कि वह मुसलमानों का बड़ा आदर करता है। चोरों और दुष्टों के निमित्त बड़ा क्रूर है। कोलम में मैंने देखा कि एक इराक़ निवासी ने तीर से एक मनुष्य को मार डाला और आऊजी के घर में जा घुसा। आऊजी बड़े धनाढ्य थे। लोगों ने विचार किया कि मृतक को गाड देवें। परन्तु राजा के प्रधान दीवान ने लोगो को ऐसा करने से रोका और कहा कि घातक जब तक हमें दे न दिया जायगा मृतक गाडा नहीं जा सकता। मृतक का शव आऊजी के गृह पर रक्खा गया। जब उसमें दुर्गंध आने लगी तब आऊजी ने घातक को राजा के हवाले किया और कहा कि मृतक के वारिसों को धन दिला दिया जाय और घातक का प्राणघात न किया जाय। राजा के कर्मचारियों ने ऐसा करने से इनकार किया। घातक को जब मरवा डाला तब मृतक गाड़ा गया।

कहा जाता है कि कोलम का राजा एक वार शहर के वाहर सवार होकर जाता था, वागों के वीच से गुज़रता था। उसके साथ उसका दामाद था। वह भी किसी राजा का पुत्र था। उसने आम का एक फल उठा लिया जो कि किसी वृत्त के नीचे पड़ा था। राजा उसकी ओर देख रहा था। राजा ने हुक्म दिया कि उसके दो भाग कर दिए जाँय, एक भाग मार्ग के एक ओर दूसरा दूसरी ओर रखा जावे। इसी प्रकार आम के भी दो भाग किए गए। वे भी पृथक् पृथक् दोनों ओर रख दिए गए ताकि दर्शक लोग शिक्षा ग्रहण करें।

मार्को पोलो ने भी अपने भ्रमण-वृत्तांत में कोलम की वावत कुछ लिखा है। कोलम नगर इस समय के ट्रावनकोर राज्य के अंतर्गत है। इसको अंग्रेजी में किलोन कहते हैं। दक्षिण कोलम्च संवत् का भी संबंध इस नगर से है।

१४—चीन में रेशम [पृष्ठ ४६

रेशम चीन मे प्राचीन काल से ही वहुत होता है। कई भागों में तो वहुत ही ज्यादा होता है परंतु कोई भाग ऐसा नहीं है जिसमे थोड़ा वहुत रेशम न होता हो। जिस प्रकार चीनी मिट्टी के पात्र वनाने तथा दस्ती तस्वीर खींचने मे चीनियों से वढ़कर कोई न हो सका उसी प्रकार रेशम के तैयार करने में भी चीनियों से कोई भी वाज़ी नहीं ले जा सका। चीन के ऐतिहासक कहते हैं कि सन् ईसवी से लगभग वाईस

सौ वर्ष पहले भी चीन में रेशम का चलन था। कुछ लोगों का कथन है कि सम्राट हुवानगी की राजेश्वरी ने ही सबसे पहले रेशम तैयार किया था और कहते हैं कि यह सम्राट सन् ईसवी से लगभग दो हजार छ सौ वर्ष पहले हुआ है। इस राजेश्वरी की पूजा चीन मे 'देवी' के समान होती है।

चीन से बहुत सा रेशम दूसरे देशों में जाता है। इस कारण अब पहले के समान सस्ता नहीं रहा, परन्तु आज भी चीन मे रेशम बहुत ज्यादा बर्ता जाता है। अब से लगभग छ सौ वर्ष पहले चीन मे रेशम की जो दशा थी उसकी बाबत इब्न बतूता कहता है कि चीन के दुखी और दरिद्र भी रेशमी कपडे पहिनते हैं। यदि अन्य देशो के व्यापारी इसको न खरीदते तो इससे अधिक तुच्छ वस्तु चीन मे और कोई न होती। रुई के एक वस्त्र के बदले में रेशम के कई वस्त्र आते हैं। चीन के प्रधान नगर पेकिन का हाल लिखते हुए मार्को पोलो कहता है कि प्रत्येक दिन एक हजार गाडियाँ रेशम से लदी हुई इस नगर में आती हैं। सन् १८४४ ई० मे फ्रास की ओर से एक कमीशन चीन में भेजा गया था। उसने रेशम के विषय में बहुत सी बातें खोज करके लिखी हैं। सच तो यह है कि रेशम का कीडा पत्तियो के साथ चिपटा रहता है और खाता रहता है। इस कारण लोगों को कीडों के पालने में कुछ कष्ट उठाना नहीं पडता। परन्तु कीडों को तूत के पत्ते खिला कर जो रेशम तैयार किया जाता है वह मजबूती और चमक दानों

ही में सर्वश्रेष्ठ होता है और जो रेशम अन्य पत्रों को खिलाकर तैयार किया जाता है वह वास्तव में मोटा, चेचमरू और कड़ा भी होता है।

१५-सेना में घोड़ों की अधिकता [पृष्ठ ५०

लड़ाई के निमित्त घोड़ों की उपयोगिता प्राचीन काल से पाई जाती है। सम्राट सिकंदर के मुकाबिले में पोरस ४००० घोड़े लेकर समर भूमि में गया था। कन्नौज के राजा हर्ष के पास पहले केवल बीस हज़ार घोड़े थे। बाद को यह संख्या बढ़ाकर एक लाख कर दी गई थी। महाराजा चंद्रगुप्त की सेना में पहले अस्सी हज़ार घोड़े थे, बाद को इनकी संख्या घटाकर तीस हज़ार कर दी गई थी। इसका कारण शायद यह था कि चंद्रगुप्त ने जंगी हाथियों की संख्या बहुत बढ़ा दी थी। सेना में हाथियों की प्रधानता तथा घोड़ों की गौणता ही हिंदू राजाओं की सेनाओं का यूनानी तथा मुसलमान जेताओं से हारने का एक प्रधान कारण थी। "अश्वा यस्य जयस्तस्य" पुरानी नीति है। आज कल भी युद्ध के लिये घोड़ों को जितना उपयोगी समझा जाता है वह किसीसे छिपा नहीं है।

१६-प्राचीन काल में हाथी [पृष्ठ ५०

इतिहास बतलाते हैं कि राजा पोरस जब सम्राट सिकंदर के साथ लड़ने के लिये युद्धक्षेत्र में गया था तो उसके साथ

चार हजार सवार, तीस हजार पैदल सिपाही तथा तीन सौ रथों के सिवा दो सौ पचास जंगी हाथी भी थे। महाराजा चन्द्रगुप्त की सेना में पहले छः हजार जंगी हाथी थे। बाद को उनकी संख्या बढ़ाकर नौ हजार कर दी गई थी। कन्नौज के राजा हर्ष की सेना में पांच हजार हाथी थे परन्तु बाद को उनकी संख्या बढ़ाकर पूरे साठ हजार तक पहुँचा दी गई थी।

युद्ध के हाथी जिरह-बख्तर से ढके रहते थे। उनके दाँतों में तेज नुकीला लोहा लगा दिया जाता था। लड़ाई में उनका होना परम आवश्यक समझा जाता था। "इय हि श्रीर्थे करिणः"। भारत के मुसलमान बादशाह भी कुछ न कुछ हाथी युद्धस्थल में अवश्य ले जाते थे। औरंगजेब जब अपने भाइयों से लड़ रहा था तब एक अवसर पर उसने आज्ञा की कि मेरे हाथी के पैर में जंजीर डाल दो। यह आज्ञा इस बात का सूचक है कि औरंगजेब ने यह निश्चय किया था कि चाहे जो कुछ हो किन्तु मैं समरांगण से मुँह न मोड़ूँगा। भारत के शूरवीर कठिन से कठिन समय में भी रणांगण से मुँह मोड़ने के बदले रणभूमि में खेत होने को अति उत्तम जानते थे और इसपर बराबर चलते भी थे। इसी नियम के अनुसार ही शायद औरंगजेब की भी आज्ञा थी। मुसलमानों के पश्चात युद्ध में हाथियों का रखना सदा चला ही आता रहा, यहाँ तक कि आजकल युद्ध के लिये हाथियों की कोई आवश्यकता ही नहीं समझी जाती।

१७–जुरुज़ अर्थात् गुर्जर देश (गुजरात) [पृष्ठ ५२

प्राचीन गुजरात अर्थात गुर्जर देश की जो सीमा थी उसका एक बड़ा भाग यदि वर्तमान राजपूताना के अंतर्गत अथवा मरुस्थल था तो उसका नाम सुलैमान ने जो जुरुज़(ﺟﺮﺯ)लिखा है संभवत: उसका कारण यह हो कि अरबी में ऐसी भूमि को जुरुज़ कहते हैं जो उपजाऊ न हो, और जिसमें घास भी न होता हो। अत: सुलैमान ने देश का नाम अरबी में आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्तन के पश्चात् लिखने के बदले ठेठ अरबी शब्द का लिखना ही अधिक उचित समझा हो, क्योंकि जुरुज़ नाम देश के निमित्त सर्वथा अनुकूल है। अथवा निम्नलिखित समाधान हो सकता है।

ज्ञात रहे कि अरबी में केवल बिंदी के हेर-फेर से पाठ तथा अर्थ में बड़ा भारी अंतर हो जाता है। म० लैंगले द्वारा संपादित मूल अरबी सामग्री में एक शब्द जुर्ज़ है। वह इ० रैनौडो की दृष्टि में 'हज़र' है, पर म० रीनो के विचार से 'जोरज़' है। मैं समझता हूँ कि इ० रेनौडो का 'जोरज़'(ﺟﺮﺯ) पाठ न्यून परिवर्तन से बहुत ठीक ठहरता है। वास्तविक बात यह है कि ज़बर, ज़ेर और पेश अर्थात अ, इ, और उ की मात्रा न होने पर प्रत्येक अरबी शब्द का उच्चारण कई प्रकार से हो सकता है। ऐसी अवस्था में संभवत: कहा जा सकता है कि 'जोरज़' शब्द 'जुर्ज़' हो और यह 'गुर्जर' शब्द से बना हो।

सस्कृत में भी गुजरात देश को 'गुर्जर देश' कहा जाता है। अब यह जानना चाहिए कि गाफ (ग) अक्षर अरबी में बहुधा जीम (ज) से बदल जाता है। जैसे 'लगाम' शब्द बदलकर अरबी में 'लजाम' हो जाता है। इस प्रकार 'गुर्जर' शब्द का 'ग' अक्षर बदलकर 'ज' बना हो और अब दो 'ज' एक साथ आ पडते हैं, इस बात को अच्छा न जान कर दूसरे 'ज' को 'जे' अर्थात् 'ज' कर देना और शब्द को तनिक घटा देना ही अधिक उचित समझा गया हो। सुलैमान ने जो 'जुर्ज' देश लिखा है निर्विवाद रूप से उसका अभिप्राय सर्वथा गुजरात देश से ही है। इस बात के अनुमोदन मे यह भी कहना अनुचित नहीं कि विदेशियो द्वारा दिए नाम प्राय अनियमित रूप से बदल ही जाते हैं और कभी और के और होजाते हैं। कौन कह सकता है कि देहली अंग्रेजी में डेलही (Delhi) और मथुरा अंग्रेजी मे मुट्रा (Muttra) आदि नाम अमुक नियम से हुए हैं? मुसलमानों द्वारा जो नाम बदले गए हैं उनमे से उदाहरणार्थ कुछ ये हैं—कालीकट का कालकूत, मरहठा की मराता आदि।

१८—गैंडा

[पृष्ठ ५५

गैंडा एक शक्तिशाली वनचर है। उसकी ऊँचाई छ फुट से अधिक नहीं होती अर्थात् वह प्राय गाय, भैंस से बडा तथा हाथी स छोटा होता है। उसकी खाल काली, कडियां

वाली और मोटी होती है। लोगों का कथन है कि तेज़ से तेज़ चाकू या तलवार उसपर कुछ असर नहीं कर सकती। प्राचीन काल में उसकी खाल से ढालें बनाई जाती थीं। यह जानवर जुगाली (पागुर) किया करता है, दलदलों और कीचड़ों में रहता है। क़ज़वीनी का मत है कि गेंडे का आकार हाथी के समान होता है। वह हाथी को सींग पर उठा लेता है। उसका सींग हाथी के पेट में उलझ जाता है और दोनों मर जाते हैं। परंतु यह बात बिल्कुल मिथ्या है कि उसमें और हाथी में स्वाभाविक वैर है। इब्न बतूता लिखता है कि गेंडा हाथी से छोटा होता है। परंतु सर हाथी के सर से कहीं बड़ा होता है। बाबर बादशाह ने अपनी 'तुज़क' में भी गेंडे का वर्णन किया है। कुछ लोगों का ख़याल है कि गेंडा मनुष्य पर अवश्य आक्रमण करता है। निस्संदेह लाल रंग से उसको बड़ी घृणा है। यदि कोई लाल वस्त्र धारण किए होता है तो वह उस पर आक्रमण किए बिना नहीं रहता।

अनेक लोग यही जानते हैं कि गेंडे के एक ही सींग होता है। परंतु वास्तविक बात यह है कि दो सींगवाले गेंडे भी होते हैं। दो सींगवाले गेंडे सुमात्रा, जावा में होते हैं। चटगाँव और ब्रह्मा में भी वे पाए जाते हैं। एक सींगवाला ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे आसाम देश में पाया जाता है। अफ़्रीका में भी होता है। सींग की लंबाई चौदह इंच से अधिक नहीं होती। शुभाशा अंतरीप (Cape of Good Hope) के यात्री मिस्टर

कोलवन ने (अफ्रीका के) गेंडे का सींग दो फुट का लिखा है । सींग को जब चौड़ाई में तराशते हैं तो उसमें बड़े विचित्र दृश्य दिखाई पड़ते हैं । सींग के भीतर हाथी, घोड़े और मुर्गे आदि की तसवीरें बनी हुई मिलती हैं । लोगों का मत है कि यदि गेंडे की सींग का बना हुआ प्याला हो और उसमें कोई ऐसी वस्तु डाल दी जाय जो कि विष हो अथवा विष से बनी हो तो प्याला उसी दम टूट जाता है ।

'मखजनुलअदविय ', नामी वैद्यक ग्रंथ में लिखा है कि यदि किसी चाकू या छुरी मे गेंडे के सींग का दस्ता लगा हुआ हो तो उसे विषैला चीज के समीप रखने से विष का असर जाता रहता है ।

मशहूर बात यह है कि गेंडे के एकही सींग हुआ करता है । ससार के अधिकांश भाग मे एकही सींगवाला गेंडा पाया जाता है, परन्तु केवल जावा, सुमात्रा टापू की ही भूमि ऐसी है जहा दो सींगवाला गेंडा होता है ।

१९—चीनी मिट्टी

[पृष्ठ ६०

चीनी मिट्टी पहाड़ की मिट्टी होती है । आग मे कोयले के समान जलती है । यह मिट्टी पत्थर मे मिलाकर तीन दिनों तक जलाई जाती है। बाद को पानी छिड़कने से सब की सब मिट्टी बन जाती है, फिर यह सड़ाई जाती है । जो मिट्टी बहुत अच्छी होती है उसका खमीर पूरे एक मास में उठता है ।

साधारण मिट्टी दस दिनों में ही निकाल ली जाती है। फिर उसीसे नाना प्रकार के पात्र बनाए जाते हैं। पहले चीनी मिट्टी के पात्र चीन देश से ही सारे देशों में जाते थे। अब चीन के सिवा अन्य देशों में भी वे बनते हैं परंतु वर्तमान समय में अद्भुत तथा अनोखे आविष्कार होने पर भी चीनी मिट्टी के वैसे पात्र देखने सुनने में नहीं आते जैसे पात्रों का वर्णन लेखक ने किया है।

२०—चीन के मृतक [पृष्ठ ६२

चीन में मुर्दे आज कल भी बहुधा गाड़े ही जाते हैं। केवल बौद्ध-भिक्षुकों की लाश जलाई जाती है। अथवा कोई लाश पड़ी रह गई हो और सड़ गई हो तो वह भी जला ही दी जाती है। परंतु कुछ यात्रियों के लेखों से ऐसा पता चलता है कि चीनी लोग चौदहवीं शताब्दी में अपने मृतकों को अवश्य जलाते थे। अतः इब्न बतूता कहता है कि चीन के निवासी काफ़िर हैं, मूर्त्तियाँ पूजते हैं, मृतकों को हिंदुओं के समान जलाते हैं। इसी प्रकार मार्को पोलो का भी कथन है। मार्को पोलो ने लगभग सारे चीन का भ्रमण किया था।

चंगेज़ खां नामी बादशाह के नाम से लोग अपरिचित नहीं हैं। यह तुर्किस्तान देश का बादशाह था। इसने तथा इसके घरानेवालों ने चीन में सन् १२१५ से १३६८ ईसवी तक राज्य किया है। इसी घराने के कई बादशाह बड़े नामी हुए

हैं। इसी घराने के कई बादशाह खाकान या काश्रान भी कहे जाते हैं। इन लोगों के गाड़े जाने का वर्णन अनेक लेखकों ने बहुत विलक्षण किया है। मार्को पालो ने लिखा है कि सार क़ाश्रान चाहे सौ मंजिल की दूरी पर मरें किंतु उन सभों की लाशें अलताई प्रहाड में ले जाते हैं और वहाँ उनको गाडते हैं। लाश के ले जाते समय जो मनुष्य मार्ग मे मिलता है उसको मार डालते हैं। मनग् क़ाश्रान की लाश लेजाने के अवसर पर इस प्रकार तीस हजार मनुष्य मारे गए थे और उसकी लाश के साथ गाडे गए थे। उनका विश्वास है कि ये सब लोग और घोडे जो मृतक के साथ गाडे जाते हैं दूसर लोक में मृतक की सेवा करेंगे। (मिलाश्रो, अग्निहोत्री के साथ यज्ञपात्रों को जलाने की वैदिक चाल और सतीदाह तथा परिस्तरणी की प्रथा)।

रशीद-उद्दीन नामी लेखक कहता है कि चंगेजखा की लाश ले जाते हुए जितने मनुष्य मिले उन सभों को कतल किया गया। इनके सिवा चालीस अमीर और सुंदर लडकियाँ और बहुत अच्छे अच्छे घोडे भी साथ ही साथ गाडे गए।

इब्न बतूता ने इस संबंध में विस्तारपूर्वक लिखा है। वह जब पेकिन में पहुँचा था उस समय काश्रान (बादशाह) वहा नहीं था। युद्ध में गया था। वह कहता है कि लडाई मे उसके मारे जाने का समाचार जब प्रधान नगर मे पहुँचा तब सारा नगर सजाया गया। नौबत और नक्कारे (डंके) बजवाए गए।

एक मास तक नाच रंग होता रहा। इसके बाद मृतक बादशाह, उसके विशेप नौकर चाकर, भाई बंधु तथा संबंधियों की लाशें जो सौ के लगभग थीं वहां पहुँची। पृथ्वी के भीतर एक बड़ा मकान खोदा गया। उसमें अच्छे अच्छे फ़र्श बिछाए गए। उसके भीतर क़ाआन को उसके हथियारों समेत रक्खा गया। उसके सोने चांदी के बर्तन रक्खे गए। चार दासियाँ और छः दास भी उसी क़बर में रक्खे गए। और उनके पानी पीने के पात्र भी साथही साथ रख दिए गए। फिर ऊपर एक दरवाज़ा बनाकर उसको मिट्टी से बंद कर दिया और एक ऊँचा टीला उसपर बना दिया गया।

फिर चार घोड़े लाए गए और उसकी क़बर पर उनको इतना दौड़ाया कि वे थक कर खड़े हो गए। इसके बाद क़बर पर एक बड़ी लकड़ी गाड़ दी गई। फिर घोड़ों के पीछे से एक लकड़ी ठोंकी और उसको उनके मुँह की ओर निकाला तथा घोड़ों को उस बड़ी लकड़ी मे लटका दिया। इसी प्रकार क़ाआन के निकट संबंधियों के लिये भी क़बरें बनाई गई। उनके साथ उनके हथियार और घर के बर्तन रक्खे गए। प्रत्येक की क़बर पर तीन तीन घोड़े लटका दिए गए। इन संबंधियों की संख्या दस थी। अन्य शेप लोगों की क़बरों पर एक एक घोड़ा लटका दिया गया। उस दिन नगर के सारे स्त्री पुरुप, मुसलमान और काफ़िर, शोक का वस्त्र धारण किए हुए वहाँ उपस्थित थे।

काफ़िर सफ़ेद चादरें और मुसलमान सफ़ेद वस्त्र धारण

किए हुए थे। कामरान की बेगमें (रानियाँ) तथा कुछ विशेष लोग चालीस दिनो तक अपने खेमो के कबर पर रहे। कुछ लोग वहाँ पूरे साल भर रहे। वहाँ एक बाजार लग गया। जिस वस्तु की उन्हे आवश्यकता होती थी वह वहाँ बिका करती थी। ऐसी प्रथा इस समय (सूडान के सिवा) अन्य देश मे नही है। हिदू और चीनी अपने मृतको को जलाते हैं, बाकी सारी जातियाँ अपने मृतको को गाडती हैं किंतु किसी अन्य को उनके साथ गाडा नहीं जाता।